ISSN : 0976-0024

अप्रैल-जून 2025

वर्ष 31, अंक 123

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

महिला Mahila विधि भारती Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिन्दी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका

Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

महिला विधि भारती, अंक 123, अप्रैल-जून 2025

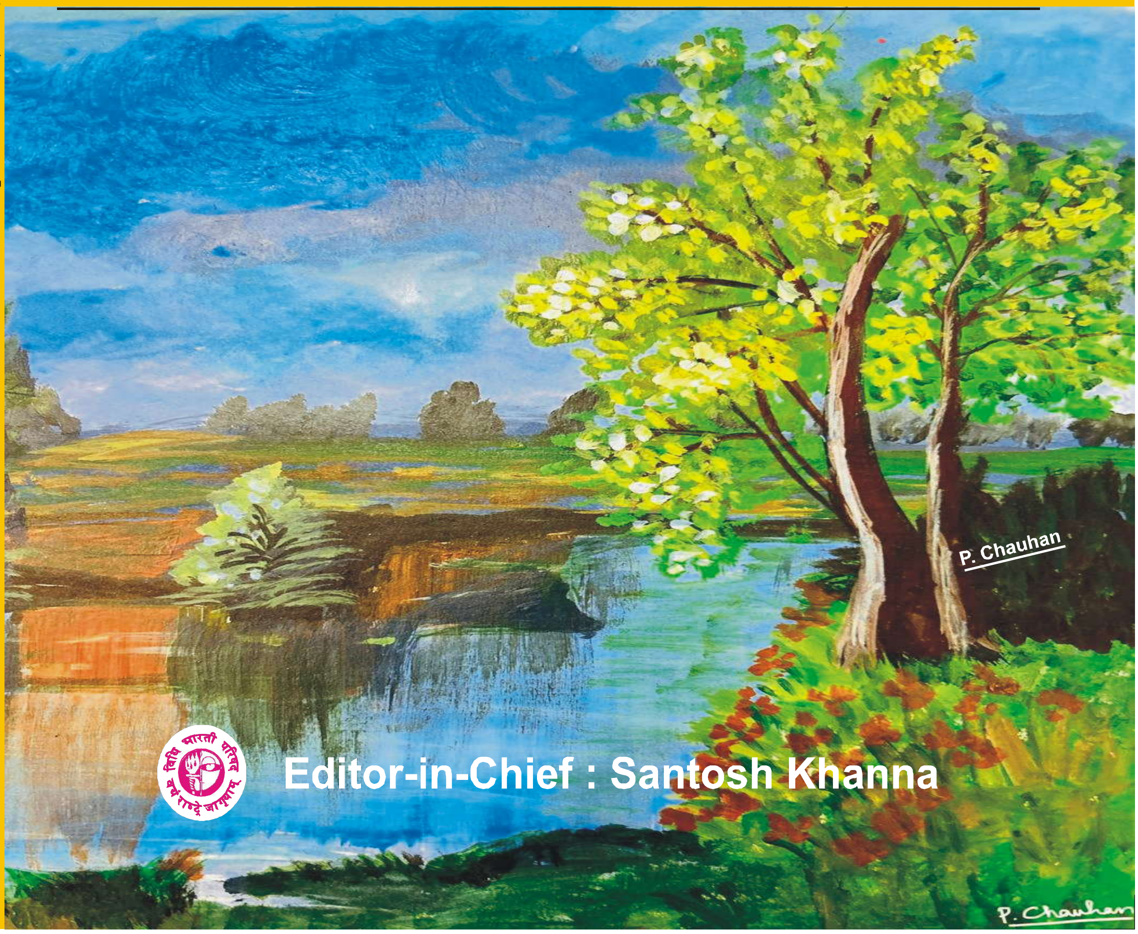

Editor-in-Chief : Santosh Khanna

विज्ञप्ति
विधि भारती परिषद्
राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार

वर्ष 2005 से विधि और न्याय के क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा हिंदी विधि लेखन को बढ़ावा देने के लिए विधि भारती परिषद् ने हिंदी विधि पुस्तकों पर 'राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार' प्रारंभ किए थे। विधि पुस्तकों पर प्रथम पुरस्कार 7100/--, द्वितीय पुरस्कार 5100/--, तृतीय पुरस्कार 3100/-- रुपए है।

वर्ष 2025 का राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार पिछले तीन वर्षों अर्थात् 2022, 2023 और 2024 में भी प्रकाशित विधि पुस्तकों पर दिया जाएगा। विधि भारती पुस्तक पुरस्कार का निर्णय एक तीन सदस्यीय पुस्तक पुरस्कार निर्णायक मंडल द्वारा किया जाएगा जो अंतिम होगा। पुरस्कार विधि भारती परिषद् के एक भव्य समारोह में प्रदान किए जाएँगे।

विधि भारती परिषद् का संक्षिप्त परिचय

विधि भारती की स्थापना 1992 में तथा इसका पंजीकरण 1993 में किया गया। वर्ष 1994 में इसकी त्रैमासिक द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) पत्रिका 'महिला विधि भारती' का प्रकाशन आरंभ हुआ। 31 वर्ष की अवधि में इसके 123 अंक प्रकाशित हो चुके हैं और अंक 124 प्रकाशनाधीन है। इस पत्रिका को दिल्ली सरकार की हिंदी अकादमी से सर्वोत्तम संपादन का दो बार पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। परिषद् ने नई सहस्राब्दी के शुभारंभ के समय 'विधि भारती सम्मान' आरंभ किए। विधि भारती सम्मान ऐसे महानुभावों को दिए जाते हैं जिन्होंने जीवन में सर्वोत्तम मानव मूल्यों की स्थापना की हो तथा विधि और न्याय के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया हो।

पुरस्कार हेतु पुस्तकें भेजने की विधि

राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार के लिए विचारार्थ हिंदी विधि पुस्तक भेजने के इच्छुक लेखक पुस्तक की दो प्रतियों के साथ 1000/- रुपए का बैंक ड्राफ्ट विधि भारती परिषद् के नाम से प्रेषित करें। लेखक पिछले तीन वर्ष में प्रकाशित एक से अधिक पुस्तकों के लिए प्रविष्ठियाँ भेज सकते हैं। पुरस्कार के विचारार्थ प्राप्त पुस्तकें किसी भी स्थिति में लौटाई नहीं जाएँगी।

विधि पुस्तकें भेजने की अंतिम तिथि 30 सितंबर, 2025 होगी।

पुस्तकें भेजने का पता :

विधि भारती परिषद्

बी.एच./48, (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

दूरभाष : 011-45579335

मोबाइल : 9899651872, 9899651272

अप्रैल-जून : 2025
April-June : 2025

वर्ष 31, अंक : 123
ISSN : 0976-0024

महिला Mahila विधि भारती Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

ISSN 0976-0024

PEER REVIEWED REFEREED JOURNAL

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव
जगदीश चंद चौहान

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-31/2025

विधि भारती परिषद्

बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

PEER REVIEWED REFEREED JOURNAL

'महिला विधि भारती' पत्रिका (पूर्व यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल, क्र. 156, पत्रिका संख्या 48462)
विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

वर्ष 31, अंक : 123, (अप्रैल-जून, 2025), **आवरण :** श्रीमती प्रतिभा चौहान

प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना **संपादक :** डॉ. उषा देव, जगदीश चंद चौहान

बोर्ड ऑफ रेफरीज़ एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ़ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ़ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. प्रो. देवदत्त शर्मा : डीएवी (पीजी) कॉलेज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
6. डॉ. सुरेंद्र यादव : निदेशक, स्केल विधि महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान
7. डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल : आई.ए.एस. (से.नि.) एवं विधि विशेषज्ञ

परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. न्यायमूर्ति मंजू गोयल (उपाध्यक्ष)
4. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
5. रेनू (कोषाध्यक्ष)
6. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
7. डॉ. प्रेमलता (सदस्य)
8. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
9. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
10. डॉ. संजीव कुमार (सदस्य)
11. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
12. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
13. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
14. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
15. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)
16. डॉ. उषा देव (सदस्य)

शुल्क दर

वार्षिक शुल्क 800/-- रुपए
संस्थागत वार्षिक शुल्क 800/-- रुपए
आजीवन शुल्क 6,000/-- रुपए
संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

डाक शुल्क 100/- रुपए

अंक 123 में

1. संपादकीय --107
2. न्यायिक बनाम विधायी शक्ति के अंतर्गत मूल संरचना सिद्धांत का मैट्रिक्स / **प्रो. (डॉ.) अटल कुमार** --109
3. भारत-पाकिस्तान के बीच सिंधु जल समझौता : वर्तमान ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य / **डॉ. रेणुवती राजपुरोहित** --119
4. भारत के बदलते चेहरे में मौलिक अधिकारों का स्पंदन / **डॉ. अनिल कुमार** --125
5. आप्रवास और विदेशियों विषयक अधिनियम, 2025 : कितना रहेगा प्रभावी? / **सन्तोष खन्ना** --132
6. विश्व शांति और आतंकवाद के संदर्भ में साहित्यकार का दायित्व / **डॉ. अमर सिंह वधान** --138
7. आतंकवाद एवं मानव अधिकार / **डॉ. प्रतिभा चौधरी** --144
8. यू.के. उच्चतम न्यायालय के एक फ़ैसले में नारी की परिभाषा / **तेजेन्द्र शर्मा** --147
9. राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं का योगदान : संविधान सभा में महिलाओं की भूमिका के संदर्भ में / **डॉ. विनय कुमारी जैन** --150
10. वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना : सनातन परंपराओं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का टकराव / **डॉ. सुधीर कुमार वत्स** --155
11. काम और नाम के लिए समय नहीं समर्पण चाहिए : संदर्भ उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश / **सुभाष सेतिया** --165
12. अंतरराष्ट्रीय आपदा प्रबंधन में शिक्षण संस्थानों की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन / **डॉ. संतोष पाटीदार** --166
13. भारत की वर्तमान स्थिति में नागरिकों के कर्त्तव्य / **सौम्य पांडेय** --175
14. War of Words Parliament vs Supreme Court / **Pran Nath Kumar** --178
15. The Effectiveness of the UNO in Enforcing International Law : Successes and Failures / **Shreshth Veer Singh Chauhan** --182
16. The Potential Benefits and Drawbacks of Legal Framework Governing Juvenile Justice in India : A Critical Analysis / **Neeraj Mehta and Dr. Rahul Varshney** --189

लेखक मंडल

प्रो. (डॉ.) अटल कुमार : प्राचार्य, मेवाड़ लॉ इंस्टीट्यूट, वसुंधरा, गाजियाबाद, (उ. प्र.)-201012

डॉ. रेणुवती राजपुरोहित : सहायक आचार्य, सर प्रताप विधि महाविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

डॉ. अनिल कुमार : सहायक प्रोफेसर, वर्तमान में प्राचार्य, भारत कॉलेज ऑफ लॉ, रुड़की, कुरुक्षेत्र, हरियाणा।

सन्तोष खन्ना : मुख्य संपादक, विधि भारती परिषद

डॉ. अमर सिंह वधान : 3150, सेक्टर 24-डी चंडीगढ़-160023 **मोबाइल :** 9876301085

डॉक्टर प्रतिभा चौधरी : प्रोफेसर, कॉलेज ऑफ लॉ, आईपीएस अकेडमी इंदौर
मोबाइल : 7987640465

तेजेन्द्र शर्मा : संपादक : ई-पत्रिका पुरवाई, यू.के.

डॉ. विनय कुमारी जैन : वरिष्ठ विशेषज्ञ, राज्य सभा में शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् हरियाणा, **मोबाइल :** 99811556668

डॉ. सुधीर कुमार वत्स : सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, **मोबाइल :** 9050951503, **ई-मेल :** sudhirvats22@gmail.com

सुभाष सेतिया : सी-302, हिंद अपार्टमेंट, प्लाट नं 12, सेक्टर 5, द्वारका, नई दिल्ली- 110075
मोबाइल : 9910907662, **ई-मेल :** setia_subhash@yahoo.co.in

डॉ. संतोष पाटीदार : सह-प्राध्यापक, चमेली देवी इंस्टीट्यूट ऑफ लॉ, इंदौर
ई-मेल : santoshpatidar13@gmail.com

सौम्या पांडेय 'पूर्ति' : लेखक, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश

Pran Nath Kumar : Legal and Corporate Consultant
Address : 4A Galacia Tower, Tata Raisina Residency, Sector-59, Gurgaon-122101
Mobile : 9810263458, **E-mail :** pnk2001@gmail.com

Shreshth Veer Singh Chauhan : Research Scholar, Mohan Lal Sukhadia University, Udaipur, **Mobile :** 8290484404

Neeraj Mehta and Dr. Rahul Varshney : MVN University, Delhi-Agra Highway, Aurangabad, Palwal, Haryana-121105

संपादकीय

22 जून, 2025 के जम्मू-कश्मीर के पहलगाँव आतंकवादी हमले को दो महीने हो चुके हैं। इस आतंकी हमले में आतंकवादियों ने महिलाओं के सामने ही उनके पतियों से उनका धर्म पूछ कर उनकी हत्याएँ कर उनके सिंदूर उजाड़ दिए थे। इस विभत्स घटना में 26 पुरुष मारे गए थे और 30 घायल हो गए थे। इस आतंकी घटना से संपूर्ण देश में रोष, आक्रोश और क्रोध की लहर दौड़ गई थी। महिलाओं से यह भी कहा गया था कि जा कर मोदी को बता देना कि आतंकवादियों ने कैसे इस जघन्य कृत्य को अंजाम दिया।

यह आतंकी हमला सीधा देश की अखंडता, अस्मिता और उसके सम्मान पर किया गया था। प्रधानमंत्री मोदी ने इस आतंकी हमले के बाद बिहार में अंग्रेजी में दिए एक भाषण में आतंकवाद के ख़िलाफ दुनिया को एक स्पष्ट संदेश दिया कि भारत आतंकवाद को ख़त्म कर न्याय सुनिश्चित करेगा। भारत का हर नागरिक इसके लिए पूरी तरह कृतसंकल्प है।

इसी संकल्प की सिद्धि के लिए मई, 2025 की 6-7 रात को भारत की सेना ने ऑपरेशन सिंदूर के अंतर्गत बिना सीमा पार किए पाकिस्तान एवं पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में नौ आतंकी ठिकाने तबाह कर उसकी सूचना पाकिस्तान को दे दी और उससे यह भी कह दिया गया कि उसने आतंकी ठिकानों को नष्ट करने का अपना उद्देश्य पूरा कर लिया है और अगर अब पाकिस्तान भारत पर हमला करेगा तो उसका उचित उत्तर दिया जाएगा।

उसके बाद की भारतीय सेना की उपलब्धियाँ समूचे विश्व के सामने हैं। ज्यों ही भारत ने पाकिस्तान में नूरख़ान जैसे सैनिक हवाई अड्डे समेत पाक के नौ एयरबेस तबाह किए तो पाकिस्तान घुटनों पर आ गया और भारत से युद्ध विराम की गुहार लगाई। भारत ने सशर्त उसकी बात मानी और बताया कि ऑपरेशन सिंदूर अभी जारी है और अगर पाकिस्तान ने फिर कोई आतंकी हरकत की तो भारत उसको छोड़ेगा नहीं।

ऑपरेशन सिंदूर अभी भी जारी है और वह अब भारत की शक्ति, साहस और शौर्य की गौरव गाथा बन चुका है। पहलगाम की आतंकी घटना के बाद भारत ने पाकिस्तान की सिंधु जल संधि को स्थगित कर दिया था। पाकिस्तान भारत से इस मुद्दे पर वार्ता के लिए गिड़गिड़ा चुका है लेकिन भारत ने पहले ही कह दिया था कि वार्ता अगर होगी तो वह आतंकवाद और पीओके के बारे में होगी क्योंकि भारत ने स्पष्ट कर दिया है कि टेरर और टॉक साथ नहीं चल सकती। ख़ून और पानी एक साथ नहीं बह सकते। इसलिए ऑपरेशन सिंदूर अब आतंक

के ख़िलाफ भारत की नीति है। यह समूचे विश्व के हक़ में है कि सभी देश आतंकवाद के ख़ात्मे के लिए भारत के साथ आएँ।

मध्य एशिया में इजरायल ने आतंकवादी इरादों पर अंकुश लगाने के लिए 'राइजिंग लायन' ऑपरेशन के तहत 13 जून, 2025 को ईरान पर हमला किया क्योंकि ईरान की आरंभ से स्पष्ट नीति इजरायल को मिटाने की है और उसी नीति के अंतर्गत उसने हमास, हिज़्बुल और हुती आतंकवादी संगठन को तैयार किया और इजरायल लंबे समय से इन संगठनों पर लगाम लगाने के लिए युद्ध कर रहा है। दूसरे शब्दों में इजरायल अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए इतने मोर्चों पर लड़ रहा है और उसी क्रम में उसे पता है कि ईरान का परमाणु शक्ति बनना उसके अस्तित्व के लिए कितना बड़ा ख़तरा है।

लगभग 12 दिन के इजरायल और ईरान युद्ध में दोनों तरफ बहुत तबाही हुई है परंतु अमरीका द्वारा ईरान के तीन महत्त्वपूर्ण परमाणु संस्थापनाओं पर बमबारी के बाद भी लगता नहीं था कि यह युद्ध जल्दी रुकेगा क्योंकि ईरान ने बार-बार कहा है कि यह युद्ध तब तक चलेगा जब तक इजरायल का अस्तित्व ख़त्म नहीं हो जाता। वह अमरीका को भी धमकाता रहा है कि वह परमाणु बम बना कर रहेगा। इस तरह की हठधर्मिता आतंकवादी मानसिकता को दर्शाती है। इजरायल देश संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यता से अस्तित्व में है कोई देश कहे कि उसे होने का कोई अधिकार नहीं, यह न केवल संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यता के लिए विरुद्ध है बल्कि अंतरराष्ट्रीय नियम क़ानून के भी विरुद्ध है। ईरान की कट्टरपंथी सरकार यह कहे कि यहूदी जाति को जीने का अधिकार नहीं है और उसके लिए वह इजरायल के आसपास आतंकवादी तैयार करता रहा है यहाँ तक कि अक्तूबर, 2023 में गाजा पट्टी से इजरायल पर हमास ने उस पर आतंकवादी हमला कर दिया जिसमें अनेक लोग मारे गए और सौ से अधिक इजरायली लोगों को बंधक बना लिया गया, तब से इजरायल ने युद्ध में इन आतंकवादियों का लगभग सफाया कर दिया और उसके बाद ही उसने ईरान पर हमला किया। बारह दिन के युद्ध के बाद क़तर ने उनमें युद्ध विराम करा तो दिया है परंतु अब देखना यह है इन दोनों देशों में यह युद्ध विराम स्थाई हो पाता है या नहीं।

अमरीकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प की इसमें अहम भूमिका है। वह यह भी चाह रहे हैं कि ईरान में वर्तमान में सत्ता परिवर्तन हो। अगर ऐसा होता है तो उसके स्थान पर कट्टर प्रकार की सत्ता न आए तभी इस इलाक़े में तनाव कम हो सकेंगे विशेष रूप से ईरान की महिलाओं को भी हक़ मिल सकेंगे।

अमेरिका भी क्यों ईरान के परमाणु बम बनाने के ख़िलाफ है? अमरीका के अनुसार, ईरान के परमाणु बम बनाने का बड़ा व्यापक उद्देश्य है। इस तरह एक तो वह इस्लामिक परमाणु बम बना कर पूरे मुस्लिम देशों का ख़लीफा बनना चाहता है। दूसरे, इससे भयंकर वास्तविक उद्देश्य है वह पूरे विश्व में इस्लामिक राज स्थापित करना चाहता है। इसके लिए न वह अमेरिका को बख़्शेगा, न रूस और चीन को। यूरोप में बताया जाता है कि इन देशों का भी इस्लामीकरण

करने के प्रयास चल रहें हैं। भारत को गजवा-ए-हिंद बनाने की साजिश अलग चल रही है। अगर यह सत्य है तो इस डरावनी मंशा के लिए तो अमरीका क्या, सभी देशों को इसका विराध करना चाहिए। फिलहाल अमेरिका ने ईरान के तीन परमाणु संयंत्रों को नष्ट कर दिया है। इसके बावजूद वहाँ कहीं रेडिएशन का स्राव नहीं हुआ है और ईरान ने कहा भी है कि उसका लगभग इनरिचड यूरेनियम सुरक्षित है क्योंकि उसने अमरीकी आक्रमण की आशंका को देखते हुए उसे वहाँ से अन्यत्र हटा दिया है। इसका अर्थ यह है कि ईरान देर-सवेर परमाणु बम बना कर रहेगा। विश्व को इस ख़तरे के बारे में गंभीरता से सोचने की ज़रूरत है।

भारत ईरान और इजरायल दोनों का मित्र हैं और दोनों का भला चाहता है और उसकी हमेशा यह नीति रही है कि युद्ध से किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता, इसलिए युद्धरत् देशों को परस्पर वार्तालाप और कूटनीति से समस्याएँ सुलझानी चाहिए। ईरान और इजरायल में युद्ध विराम तो हो गया है परंतु उन्हें मतभेद भुलाकर कर वार्तालाप कर समस्या का स्थाई समाधान खोजना होगा, उसी में उनका हित है।

❑

‘ऑपरेशन सिंदूर’ का
रचा गया इतिहास
अन्याय अत्याचार का
किया समूल विनाश।।

-- सन्तोष खन्ना

प्रो. (डॉ.) अटल कुमार

न्यायिक बनाम विधायी शक्ति के अंतर्गत मूल संरचना सिद्धांत का मैट्रिक्स

सार / भाव : भारतीय संविधान का मूल ढाँचा केशवानंद भारती[1] मामले का मूल सिद्धांत है जो मनमाने ढंग से बदलाव के मौलिक सिद्धांतों की रक्षा करता है। यह संसद और न्यायपालिका दोनों के लिए अपनी भूमिका पर ज़ोर देता है। संवैधानिक अखंडता सुनिश्चित करने के संदर्भ में, सिद्धांत को व्याख्यात्मक अस्पष्टता और शक्ति संतुलन के बारे में चिंताओं जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। अपनी सीमाओं के बावजूद, यह भारतीय संवैधानिक न्यायशास्त्र के निर्माण में एक निर्णायक कारक था, जिसने विधायी लचीलेपन और न्यायपालिका और संविधान के सार को बनाए रखने के कर्त्तव्य के बीच एक नाजुक संतुलन बनाए रखा।

उच्चतम न्यायालय के कई मामलों ने मूल संरचना सिद्धांत की पुष्टि और स्पष्टीकरण किया है। उदाहरण के लिए, मिनर्वा मिल्स[2] के मामले में, अदालत ने मूल संरचना को संरक्षित करने के लिए परिवर्तन करने के लिए संसद की सीमित शक्ति पर ज़ोर दिया। इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण[3] एक और महत्त्वपूर्ण मामला है जिसमें अदालत ने मूल संरचना के हिस्से के रूप में लोकतंत्र की रक्षा की।

परिचय : 'मूल संरचना का सिद्धांत'[4] संवैधानिक जाँच के रूप में कार्य करता है और यह सुनिश्चित करता है कि परिवर्तन उन मौलिक सिद्धांतों और मूल्यों को कम न करें जिन पर भारत का संविधान बना है। यह संवैधानिक न्यायशास्त्र की आधारशिला बना हुआ है, जो भारतीय क़ानून के विकास को आकार देता है।

आधार संरचना को एक उदाहरण से समझते हैं। मान लीजिए कि कोई इमारत है और आपको इमारत को पूरी तरह से फिर से बनाने की शक्ति दी गई है। लेकिन शर्त यह है कि इमारत के मूल स्तंभों के साथ छेड़छाड़ नहीं की जा सकती, वे वैसे ही रहेंगे। आप चाहें तो मंजिल बढ़ा सकते हैं या क्षेत्रफल बढ़ा सकते हैं, लेकिन उन स्तंभों को कुछ नहीं होना चाहिए, यही मूल संरचना का सिद्धांत है।

उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि संविधान की कुछ मूलभूत विशेषताएँ हैं, जिन्हें संसद अपनी शक्ति का उपयोग करके संशोधित नहीं कर सकती, जिसे मूल संरचना का सिद्धांत[5] कहा जाता है।

उद्देश्य : 'भारतीय संविधान के मूल ढाँचे' का उद्देश्य भारत के क़ानूनी और राजनीतिक ढाँचे की आधारशिला बनाने वाले मूल संवैधानिक सिद्धांतों का संरक्षण सुनिश्चित करना है। इसका उद्देश्य मौलिक विशेषताओं को मनमाने संशोधनों से सुरक्षित रखना है, कुछ आधारभूत मूल्यों की स्थायित्व को सुदृढ़ करना है।

मूल संरचना सिद्धांत के दायरे में संघवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, क़ानून का शासन और शक्तियों के पृथक्करण[6] जैसे सिद्धांत शामिल हैं।

उच्चतम न्यायालय ने कई न्यायालयीन निर्णयों में इन आवश्यक तत्वों को मान्यता दी और संरक्षित किया, उन्हें संवैधानिक संशोधनों से मुक्त घोषित किया जो उनके महत्त्व को कमज़ोर या कम कर सकते हैं। मौलिक रूप से, मूल संरचना का सिद्धांत भारतीय संविधान की अखंडता और पहचान को उन संभावित परिवर्तनों के विरुद्ध संरक्षित करने के लिए एक संवैधानिक सुरक्षा के रूप में कार्य करता है जो इसके मूल सिद्धांतों को कमज़ोर कर सकते हैं।

अवधारणा : मान लीजिए मैंने आपको कपड़े का एक टुकड़ा दिया और इसके साथ ही मैंने आपको इसे बदलने के लिए एक कैंची भी दी, यानी मैंने आपको शक्ति भी दी। उस शक्ति का उपयोग करके, आप इस कपड़े से एक शर्ट, एक टोपी या यहाँ तक कि एक मुखौटा भी बना सकते हैं। इस शक्ति का उपयोग करके क्या आप इस पूरे कपड़े को फाड़कर फेंक सकते हैं? यह कपड़ा भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार हैं और यह कैंची परिवर्तन की शक्ति है, यह संसद की संशोधन करने की शक्ति है। सबसे पहले, क्या भारत के संविधान के मौलिक अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है? दूसरा, संसद के पास संशोधन की शक्ति की सीमा क्या है, यानी संसद किस हद तक संशोधन कर सकती है? अब, दो सवाल हैं कि क्या मौलिक अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है और संसद के पास कितनी शक्ति है। ये दोनों सवाल काफी सरल लगते हैं, लेकिन बहुत भ्रम पैदा करते हैं। यह भ्रम अनुच्छेद-13 और अनुच्छेद-368 से आता है। लेकिन इन पर आने से पहले, कृपया एक सवाल का जवाब दें। संविधान संशोधन की आवश्यकता क्यों पड़ी? हमें अपना संविधान तैयार करने में 2 साल, 11 महीने और 18 दिन लगे। तो उसके बाद भी संशोधन की आवश्यकता क्यों है? ऐसा इसलिए क्योंकि यह 1950 में आया था। इसे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए बनाया गया था।

संविधान खुद कहता है कि बदलते समय के साथ जब समाज में नए अधिकारों की आवश्यकता होती है, तो संविधान में संशोधन किया जा सकता है। इसी कारण संविधान में आरक्षण क़ानून लाया गया, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार के लिए संशोधन लाए गए और संविधान में संशोधन किए गए। अब हम अनुच्छेद-13 और अनुच्छेद-368 पर आते हैं। अनुच्छेद-13 कहता है कि संसद ऐसा कोई क़ानून नहीं बना सकती जो हमारे मौलिक अधिकार यानी हमारे प्राकृतिक और सर्वोच्च अधिकार का उल्लंघन करता हो या उसे कम करता हो।

दूसरा अनुच्छेद-368 है जो संसद को संशोधन करने की शक्ति देते हुए कहता है कि संसद संविधान के किसी भी हिस्से में बदलाव कर सकती है। यहाँ भ्रम की स्थिति पैदा होती है कि क्या

संसद अपने अधिकारों का इस्तेमाल मौलिक अधिकारों में बदलाव लाने के लिए कर सकती है? क्या वह उन्हें पूरी तरह से खत्म कर सकती है? क्या अनुच्छेद-13 संसद को इस शक्ति का इस्तेमाल करने से रोकता है? अब यह सवाल इतना महत्त्वपूर्ण है कि जब भी संविधान संशोधन अधिनियम, 1, 17, 24, 39, 42 लाए गए, तो यह सवाल पूछा गया।

इसका उत्तर उच्चतम न्यायालय के कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णयों में दिया गया है -- शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ,[8] सज्जन सिंह केस,[9] गोलेकनाथ केस,[10] केशवानंद भारती केस,[11] इंदिरा गांधी केस[12] और मिनर्वा मिल्स केस[13] आदि। तो, हम इन सवालों के जवाब खोजने की कोशिश करेंगे और जवाब निर्धारित करते समय, हम इस महत्त्वपूर्ण संशोधन और क़ानून की प्रासंगिकता को भी समझेंगे।

आइए हम पहले संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 से शुरुआत करते हैं, जो अनुच्छेद 31 से संबंधित है। अनुच्छेद 31 संपत्ति के अधिकार की बात करता है और यह कहता है कि प्रत्येक नागरिक को संपत्ति का मौलिक अधिकार होगा। प्रारंभ में, हमारे संविधान ने हमें 7 मौलिक अधिकार दिए थे। लेकिन 1951 में पहले संशोधन[14] द्वारा संपत्ति के अधिकार को हटा दिया गया था। जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो भूमि के स्वामित्व में बहुत असमानता थी। कोई भी किसान या खेतिहर हो, उसके पास कोई जमानत नहीं थी। ऐसी स्थिति में, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन स्वतंत्र भारत की एक क्रांतिकारी नीति थी। और इस सुधार के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक समिति का गठन किया जिसका नाम कृषि सुधार समिति था जिसके अध्यक्ष जे.सी. कुमारप्पा थे। इस भूमि सुधार समिति के दो मुख्य उद्देश्य थे। पहला, कृषि उत्पादन में वृद्धि करना और दूसरा कारण वर्षों से चले आ रहे सामाजिक अन्याय को समाप्त करना था, यानी ग्रामीण आबादी को समान दर्जा और अवसर प्रदान करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भूमि जोत की अधिकतम सीमा तय की गई यानी एक व्यक्ति कितनी भूमि का मालिक हो सकता है इसकी सीमा तय की गई। 1951 में पहला संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया जिसने संविधान में अनुच्छेद-31ए, अनुच्छेद-31बी और 9वीं अनुसूची को शामिल किया।

पहला संविधान संशोधन : सबसे पहले, अनुच्छेद-31 में अनुच्छेद-31ए और अनुच्छेद-31बी जोड़ा गया, जो कहता है कि राज्य को क़ानून बनाकर यानी क़ानूनी प्रक्रिया के जरिए किसी भी व्यक्ति की संपत्ति वापस लेने की शक्ति है। और यह अनुच्छेद बताएगा कि उस व्यक्ति को कितना मुआवजा मिलना चाहिए।

दूसरा, जो बदलाव हुआ वह यह था कि अनुच्छेद-19(1)(जी) में कुछ प्रतिबंध लगाए गए। जिसके जरिए राज्य को किसी भी व्यवसाय को पूरी तरह या आंशिक रूप से अधिग्रहित करने की शक्ति थी।

जिसका असर यह हुआ कि मौलिक अधिकार प्रभावित हो रहा था। और अनुच्छेद-31 की शक्ति कम हो रही थी। इसलिए 1951 के पहले संशोधन अधिनियम को चुनौती दी गई -- शंकरी प्रसाद बनाम यूओआई 1951[15] में, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संसद को अनुच्छेद-368

के जरिए सारी शक्ति है कि वे चाहें तो मौलिक अधिकार में संशोधन कर सकते हैं।

उस मामले में अनुच्छेद-13 और अनुच्छेद-368 के बीच भ्रम की स्थिति थी यानी सत्ता संघर्ष। उसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि अनुच्छेद-13 साधारण क़ानूनों पर लागू होता है अर्थात यह सामान्य क़ानूनों पर लागू होता है। इसका मतलब यह है कि शंकरी प्रसाद के मामले[16] में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से मौलिक अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है और अनुच्छेद-13 इस पर लागू नहीं होगा, यानी अनुच्छेद-368 को अधिक शक्तिशाली माना गया।

17वाँ संविधान संशोधन अधिनियम : इस संविधान संशोधन से जो भी परिवर्तन किए गए, उनका उपयोग करते हुए विभिन्न राज्य सरकारें अपने भूमि सुधार अधिनियम को हटाकर 9वीं अनुसूची में डाल देती हैं। इस 9वीं अनुसूची की खास बात यह है कि अगर कोई क़ानून मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है या उसके खिलाफ़ है तो यह उस क़ानून को शून्य घोषित कर देती है। लेकिन अगर कोई क़ानून 9वीं अनुसूची में शामिल है तो इसका मतलब है कि उसे लागू किया जाएगा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह क़ानून मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है या नहीं। देखा जाए तो 9वीं अनुसूची एक तरह से किसी भी तरह के हमले से प्रतिरक्षा प्रदान करती है। जो भी क़ानून थे, वे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन कर रहे थे। इसलिए 17वें संशोधन अधिनियम की 9वीं अनुसूची को चुनौती दी गई -- सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य। इस मामले का फैसला 5 बेंच के जज ने किया और फैसला 3:2 के अनुपात में आया। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने शंकर प्रसाद के फैसले को सही ठहराया और कहा कि अनुच्छेद-368 के जरिए संसद के पास मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की पर्याप्त शक्ति है और अनुच्छेद-13 संविधान संशोधन अधिनियम पर लागू नहीं होगा।

इस मामले में, सी.जे. गजेंद्रगडकर, जिन्होंने बहुमत से फैसला सुनाया था, ने कहा था कि संविधान बनाते समय, यदि संविधान निर्माता मौलिक अधिकारों को संशोधनों से बचाना चाहते थे, तो वे एक स्पष्ट प्रावधान लिखते। लेकिन संविधान में मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए ऐसा कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है। इसलिए हम मान लेंगे कि मौलिक अधिकार में संशोधन किया जा सकता है। गजेंद्रगडकर के इस दृष्टिकोण से, जे. हिदायतुल्ला और जे. मुधोहोलकर संतुष्ट नहीं थे, इसलिए मामले को एक बड़ी बेंच को भेज दिया गया। सज्जन सिंह का मामला 5 जजों की बेंच का था। यदि आप 5 जजों की बेंच के फैसले को आगे रेफर करना चाहते हैं, तो इसे 5 जजों की बेंच को नहीं भेजा जाएगा, इसे एक बड़ी बेंच को भेजा जाएगा। इसलिए सज्जन सिंह केस[17] को 11 जजों की बेंच को भेजा गया। और एक महत्त्वपूर्ण मामला था -- गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य। अगर सज्जन सिंह केस की बात करें तो शंकरी प्रसाद केस की तरह ही इसमें भी अनुच्छेद-368 को ज्यादा महत्त्व दिया गया।

अब गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के मामले में 11 जजों की बेंच के जज ने कहा कि अनुच्छेद-368 के जरिए संसद को जो भी शक्ति दी गई है, वह निरपेक्ष नहीं है। वह शक्ति कुछ

सीमाओं और कुछ प्रतिबंधों के भीतर है और इस शक्ति की न्यायिक समीक्षा हो सकती है। इसका मतलब यह है कि उच्चतम न्यायालय ने गोलकनाथ के केस में कहा कि अगर संसद अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए कोई संशोधन अधिनियम (17वाँ) लाती है तो उस पर अनुच्छेद-13 लागू होगा।

एक बहुत ही अलग बिंदु होने के कारण यह केस शंकरी प्रसाद और सज्जन सिंह के केस के फैसले को खारिज करता है, इसमें कहा गया था कि संसद के पास निरपेक्ष शक्ति नहीं है और संसद जो भी क़ानून ला रही है, वह मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करता है। और अनुच्छेद-13 पर संविधान संशोधन अधिनियम लागू होगा। यानी शंकर प्रसाद और सज्जन सिंह के केस में आए फैसले का ठीक उल्टा फैसला गोलकनाथ के केस में दिया गया। इस केस ने अनुच्छेद-13 को ज्यादा महत्त्व दिया था यानी संसद कोई ऐसा क़ानून नहीं ला सकती जो मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता हो। जैसे ही यह जजमेंट सुनाया जाता है, अब तक के सारे संशोधन जैसे 17वाँ संविधान संशोधन जो संपत्ति के अधिकार[18] को कम कर रहा था, इन सारे संशोधन अधिनियमों को चुनौती मिलनी शुरू हो जाती है। इस परेशानी से बचने के लिए इस केस में उच्चतम न्यायालय कहता है कि यह जजमेंट यानी रूलिंग आज से जजमेंट पर लागू होंगे। और पुराने संशोधन अधिनियमों को चुनौती नहीं दी जा सकती।

गोलकनाथ के केस का असर यह होता है कि इससे संसद की शक्ति यानी अनुच्छेद-368 की शक्ति कम हो जाती है जिसे संसद बर्दाश्त नहीं कर सकती, तो अपनी शक्ति वापस पाने के लिए यानी गोलकनाथ के फैसले को पलटने के लिए संसद 24वाँ संविधान संशोधन अधिनियम लाती है और यह संशोधन सारी अराजकता की जड़ यानी भ्रम की जड़ है।

अनुच्छेद 13 और अनुच्छेद 368 में संशोधन किया गया है, जिसके लिए अनुच्छेद 13 में खंड (4) जोड़ा गया है और अनुच्छेद 368 में खंड (3) जोड़ा गया है। जिसमें अनुच्छेद 368(3) में कहा गया है कि अगर पार्टी कोई संवैधानिक संशोधन लाती है तो वह अनुच्छेद 13(4) के अंतर्गत नहीं आयेगा और यह कहता है कि यह अनुच्छेद 368(3) पर लागू नहीं होगा।

24वाँ संविधान संशोधन : संसद मूल कारण यानि मुख्य भ्रम में संशोधन करती है। और इसके साथ ही 24वाँ संशोधन अधिनियम कहता है कि संसद को संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने का अधिकार है, जिसमें मौलिक अधिकार भी शामिल हैं यानी संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है, जिसमें मौलिक अधिकार भी शामिल हैं। इसके साथ ही 24वें संशोधन में संसद ने एक और बात कही कि अगर अनुच्छेद-368 गोलकनाथ केस के फैसले को पलटने के लिए कोई संशोधन अधिनियम लाता है, तो वह अनुच्छेद-13(4) के अंतर्गत नहीं आएगा। इसके साथ ही कुछ अन्य संशोधन अधिनियम भी आए, जैसे 25वाँ संशोधन अधिनियम जो संपत्ति के अधिकार को कम करता है, 26वाँ संशोधन अधिनियम जो प्रिवी पर्स को समाप्त करता है।

29वाँ संविधान संशोधन अधिनियम,[19] जो भूमि सुधार लाया : अगले मामले में, जिस पर हम चर्चा करने जा रहे हैं, अनुच्छेद-24, 25, 26, 29 संविधान संशोधन और गोलकनाथ केस के

फैसले को चुनौती दी गई थी। यह 13 जजों की बेंच का फैसला था -- केशवेंद्र भारती बनाम यूओआई, 1973। इस मामले को लोकप्रिय रूप से मौलिक अधिकार केस भी कहा जाता है। इस मामले में, एक बार फिर उच्चतम न्यायालय के सामने सवाल था कि संसद के पास संशोधन की कितनी शक्ति है। क्या संसद चाहे तो पूरे संविधान और सभी मौलिक अधिकारों को संशोधित या समाप्त कर सकती है? इस सवाल का जवाब देते हुए उच्चतम न्यायालय ने पहले कहा था कि संसद के पास संविधान में संशोधन करने की अपार शक्ति है और यह शक्ति 24वें संविधान संशोधन से पहले अनुच्छेद-368 में भी मौजूद थी। इस संशोधन ने इस शक्ति को और स्पष्ट कर दिया है, यह कहते हुए 24वें संविधान संशोधन को वैध क़रार दिया गया। लेकिन, जब यह सवाल आया कि क्या संसद सभी मौलिक अधिकारों में संशोधन करके उन्हें समाप्त कर सकती है तो उस केस ने एक अलग जवाब दिया यानी एक अलग दृष्टिकोण अपनाया। अब तक जितने भी फैसले आए हैं, चाहे वह सज्जन सिंह केस हो, शंकरी प्रसाद केस हो या गोलकनाथ केस हो। या तो उन्होंने अनुच्छेद-13 का पक्ष लिया या अनुच्छेद-368 का। केशवानंद भारती का केस इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस केस में उच्चतम न्यायालय ने बैलेंस अप्रोच को अपनाया और मूल ढाँचे के सिद्धांत को स्वीकृति दी। मूल ढाँचे के लिए कौन-सी विशेषताएँ होंगी? इसका जवाब देते हुए सी.जे. शिकारी ने केशवानंद भारती केस में कहा था कि जो भी सूची है, वह संपूर्ण नहीं है। आने वाले केसों में और तत्व भी मूल ढाँचे के लिए योग्य हो सकते हैं। भविष्य में कभी यह सवाल उठे कि कोई विशेष विशेषता मूल ढाँचे का हिस्सा है या नहीं, तो आपको संविधान निर्माताओं की मंशा पर ध्यान देना चाहिए। संविधान जिस मंशा से बनाया गया था, वह विशेष प्रावधान बनाया गया था।

31वाँ संविधान संशोधन अधिनियम[20] : जिसमें इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण, 1975। इन दोनों को समझने से पहले आइए इनकी पृष्ठभूमि को समझते हैं। 12 जून, 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय एक ऐतिहासिक फैसला सुनाता है, जिसमें चुनावी कदाचार के कारण, वह श्रीमती इंदिरा गांधी के चुनाव को रद्द कर देता है और इसके साथ ही, इंदिरा गांधी को अगले 6 वर्षों के लिए किसी भी निर्वाचित पद पर रहने से रोक देता है। इसलिए इंदिरा गांधी इस फैसले से बहुत असंतुष्ट हैं, और वह दो काम करती हैं-

सबसे पहले, वह उस फैसले के खिलाफ़ उच्चतम न्यायालय में अपील दायर करती हैं और अपील से एक दिन पहले 39वाँ संविधान संशोधन पारित करती हैं। दूसरा, कुछ दिनों के बाद राष्ट्रीय आपातकाल लगा दिया जाता है। 39वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा, उन्होंने संविधान में एक नया अनुच्छेद-329ए पेश किया और मौजूदा अनुच्छेद-71 को हटा दिया जिसमें कहा गया था कि उच्चतम न्यायालय के पास चुनावी विवाद को सुलझाने का अधिकार नहीं होगा। यानी उच्चतम न्यायालय चुनावी विवाद की सुनवाई नहीं कर सकता, जिसमें राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और लोकसभा के स्पीकर शामिल हैं। अगर इनके चुनाव को लेकर कोई विवाद है तो उसकी सुनवाई अलग निकाय द्वारा की जाएगी। यानी उच्चतम न्यायालय में सुनवाई नहीं हो सकती। इस 39वें संशोधन के आने के बाद इंदिरा गांधी का मामला उच्चतम न्यायालय में नहीं चल सकता था। इस

संशोधन का उद्देश्य बहुत साफ था कि प्रधानमंत्री के तौर पर इंदिरा गांधी अपना कार्यकाल जारी रखें और इस जजमेंट को प्रभावित करना था लेकिन अगले चुनाव का नतीजा बहुत चौंकाने वाला रहा, जनता पार्टी इस चुनाव में भारी मतों से जीत जाती है और मोरारजी अगले प्रधानमंत्री बन जाते हैं। सत्ता में आने के बाद जनता पार्टी राष्ट्रीय आपातकाल और 39वें संशोधन के दौरान जो भी गलतियाँ हुई थीं, उन्हें ठीक करने के लिए कुछ क़ानून पास करती है। सबसे पहले उन्होंने आर्टिकल-329ए को हटाया यानी नया आर्टिकल हटाया और फिर से आर्टिकल-71 बहाल कर दिया। ऐसा करने से उच्चतम न्यायालय को फिर से शक्ति मिल गई, वह चुनावी विवाद की सुनवाई कर सकता है।

42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम[21] **:** इस संशोधन अधिनियम ने कई बदलाव किए, जिसके कारण इसे मिनी संविधान कहा गया। अब हम दो बदलावों की बात करेंगे -- पहला, अनुच्छेद-31सी- संपत्ति के अधिकार में खंड (4) जोड़ा गया। दूसरा, अनुच्छेद-368 में खंड (4) और खंड (5) जोड़े गए। पहला संशोधन कहता है कि अगर संविधान के भाग-1 (भाग-3 मौलिक अधिकार है) यानी राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में कोई प्रावधान जोड़ा जाता है और वह प्रावधान मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है, तो भी वह वैध रहेगा और उसे अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती। यानी, भाग-15 (डीपीएसपी) में संसद को कुछ भी संशोधन करने का अधिकार था। यानी कोई भी प्रावधान जोड़ सकता था।

इसी तरह अनुच्छेद-368(4) में कहा गया है कि संसद भाग-3 (मौलिक अधिकार) में किसी भी तरह का संशोधन कर सकती है। यानी अगर कोई प्रावधान डाला या हटाया जाता है, तो उसे अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती। यानी अनुच्छेद-31(सी) और अनुच्छेद-368(4) के जरिए न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति छीनी जा रही थी, यानी उसे कम किया जा रहा था। अब भाग-3 और भाग-4 में संसद को कोई भी प्रावधान करने की शक्ति मिल गई थी। अनुच्छेद-368(5) कहता है कि संसद के पास जो संशोधन की शक्ति है, उसकी कोई सीमा नहीं होगी। यानी संसद किसी भी तरह का संशोधन करने के लिए स्वतंत्र है। यानी वो कुछ जोड़ सकती है या कुछ हटा सकती है। उस पर कोई सीमा नहीं होगी। यानी संसद की शक्ति निरपेक्ष होगी।

इस संशोधन का उद्देश्य केशवानंद भारती केस से आए बदलाव के प्रभाव को खत्म करना था। क्योंकि संसद के पास कुछ भी बदलने की शक्ति है और बदलाव करते समय उसे मूल ढाँचे को ध्यान में रखना होता है। उसी मूल ढाँचे की सीमा को हटाने के लिए 42वाँ संशोधन लाया गया। जो न्यायिक समीक्षा के दायरे को खत्म करता है और संसद की सभी सीमाओं को हटा देता है। इसलिए 42वें संविधान संशोधन अधिनियम को चुनौती दी गई- मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ और अन्य, 1980 में। इस मामले में याचिकाकर्ता बॉम्बे की प्रसिद्ध मिनर्वा मिल्स के मालिक थे। राष्ट्रीयकरण के कारण सरकार इन मिलों का अधिग्रहण कर लेती है। इस मामले में अनुच्छेद-31सी, अनुच्छेद-378(4) और अनुच्छेद-368(5) जैसे संशोधनों को अवैध घोषित कर दिया गया और इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने तीन नई बुनियादी विशेषताएँ दीं --

पहली है न्यायिक समीक्षा -- उच्चतम न्यायालय ने कहा, न्यायालय के पास न्यायिक समीक्षा की शक्ति एक बुनियादी विशेषता है और संसद न्यायिक समीक्षा को दबा नहीं सकती, यानी संशोधन के जरिए इसे कम नहीं कर सकती।

दूसरी बात, उच्चतम न्यायालय ने सीमित संशोधन शक्ति के बारे में कहा कि संसद के पास सीमित संशोधन शक्ति है। संसद उसी सीमित शक्ति का उपयोग करके अपनी शक्ति का विस्तार नहीं कर सकती और यही इसकी बुनियादी विशेषता है। संसद के पास पूर्ण शक्ति नहीं है।

तीसरा, उच्चतम न्यायालय ने कहा, भाग-तीन और भाग-चार के बीच सामंजस्य होना चाहिए यानी मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों (DPSP) के बीच संतुलन होना चाहिए। यानी दोनों को विपरीत कार्य नहीं करना चाहिए और सामंजस्य भी एक बुनियादी विशेषता है।

वामन राव बनाम भारत संघ और उसके बाद केशवानंद भारती के फैसले (मूल संरचना के सिद्धांत के संशोधन के बाद), सभी संशोधन प्रश्न उठाए जाने लगे यानी चुनौतियाँ शुरू हो गईं। तो किस आधार पर, ये संविधान संशोधन मूल संरचना के सिद्धांत की शर्तों को पूरा करते हैं या वे उनके लिए हानिकारक हैं?

सोचें, यह कितना खतरनाक है कि सभी संवैधानिक संशोधनों को मूल संरचना के सिद्धांत के आधार पर चुनौती दी जा रही थी। वामन राव के मामले में, इसका समाधान देते हुए, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि केशवानंद भारती जजमेंट, जिसमें मूल संरचना की अवधारणा 24 अप्रैल, 1973 को आई थी। इस तारीख से, भावी क़ानून लागू होंगे, जबकि पूर्वव्यापी (यानी पुराने क़ानून) लागू नहीं होंगे।

न्यायपालिका के विरुद्ध विधान के संबंध में मूल संरचना का सहसंबंधी अध्ययन : भारतीय संविधान की मूल संरचना की अवधारणा संसद और न्यायपालिका दोनों के लिए एक महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धांत है।

संविधान की अखंडता का संरक्षण : सिद्धांत विधायी शक्ति और संविधान को बदलने के अधिकार के नियंत्रण के रूप में कार्य करता है। यह मनमाने बदलावों को रोकता है जो संविधान के मूल सिद्धांतों को खतरे में डाल सकते हैं।

संशोधनों के लिए रूपरेखा : जबकि संसद के पास संविधान में संशोधन करने की शक्ति है, मूल संरचना का सिद्धांत एक रूपरेखा प्रदान करता है जिसमें उस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, यह सुनिश्चित करते हुए कि यह आवश्यक विशेषताओं का उल्लंघन नहीं करता है।

न्यायिक समीक्षा और संरक्षण : न्यायपालिका परिवर्तनों की संवैधानिकता का आकलन करने के लिए न्यायिक समीक्षा का उपयोग करके मूल संरचना को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह सुनिश्चित करता है कि सभी विधायी उपाय संविधान के मौलिक मूल्यों के अनुरूप हैं।

स्थिरता और निरंतरता : यह सिद्धांत एक स्थिर और सुसंगत संवैधानिक ढाँचे को सुनिश्चित करता है। मनमाने बदलावों से बचकर, यह क़ानूनी प्रणाली की निरंतरता और स्थिरता को बढ़ावा देता है।

संक्षेप में, मूल संरचना का सिद्धांत संसद की शक्तियों और न्यायालयों की भूमिका के बीच एक नाजुक संतुलन बनाता है, यह सुनिश्चित करता है कि संवैधानिक संशोधन भारत के संविधान में निहित मौलिक सिद्धांतों का पालन करें। यह एक संवैधानिक कम्पास के रूप में काम करता है जो राष्ट्र और सर्वोच्च क़ानून की अखंडता और भावना को संरक्षित करने के लिए दोनों शाखाओं का मार्गदर्शन करता है।

भारतीय संविधान के मूल ढाँचे की सीमाएँ : भारतीय संविधान का मूल ढाँचा एक महत्त्वपूर्ण सुरक्षा कवच के रूप में कार्य करता है, इसकी कुछ सीमाएँ हैं। एक महत्त्वपूर्ण सीमा यह है कि मूल संरचना का सटीक रूप से गठन करने वाली अस्पष्टता है। अवधारणा गतिशील है और न्यायिक व्याख्या के अधीन है, जिससे इसकी सीमाओं के बारे में अनिश्चितता और बहस हो सकती है।

इसके अतिरिक्त, इस सिद्धांत को संभावित रूप से न्यायपालिका को संवैधानिक संशोधनों को रद्द करने की पर्याप्त शक्ति देने के रूप में देखा जा सकता है, जिससे सरकार की तीन शाखाओं के बीच शक्ति संतुलन के बारे में सवाल उठते हैं। आलोचकों का तर्क है कि इससे संसदीय संप्रभुता के लोकतांत्रिक सिद्धांत को नुकसान पहुँच सकता है। इसके अलावा, मूल संरचना सिद्धांत राजनीतिक विचारधाराओं के विकास के प्रति संवेदनशील हो सकता है, जो समय के साथ इसके सुसंगत अनुप्रयोग के लिए चुनौती पेश करता है। संक्षेप में, अंतर्निहित अस्पष्टता, संभावित न्यायिक अतिक्रमण और विकसित व्याख्याओं के प्रति संवेदनशीलता भारतीय संविधान में मूल संरचना सिद्धांत की उल्लेखनीय सीमाएँ हैं।

निष्कर्ष

अंत में, भारतीय संविधान की मूल संरचना एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है जो केशवानंद भारती मामले[22] से उभरा है जिसने संवैधानिक परिदृश्य को महत्त्वपूर्ण रूप से आकार दिया है। यह मनमाने बदलावों के खिलाफ़ सुरक्षा के रूप में कार्य करता है और संघवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और क़ानून के शासन जैसे मौलिक सिद्धांतों के निरंतर संरक्षण को सुनिश्चित करता है।

भारतीय और संवैधानिक न्यायशास्त्र की आधारशिला के रूप में, मूल संरचना का सिद्धांत इस धारणा को पुष्ट करता है कि संविधान भले ही विकसित हो सकता है, लेकिन कुछ सिद्धांत बरक़रार रहते हैं। यह विधायी लचीलेपन और न्यायपालिका के बीच नाजुक संतुलन और भारतीय संविधान के सार की रक्षा करने के कर्त्तव्य को उजागर करता है, यह सुनिश्चित करता है कि राष्ट्र और उसके मूल मूल्य समय के साथ कायम रहें।

❑

Bibliography

1. Basu D.D, Constitutional Law of India, New Delhi : Prentice Hall of India, 2023

2. Dr. J. N. Pandey, The Constitutional Law of India, CLA, Allahabad, 2023
3. Bakshi P. M, The Constitution of India,Universal Law Publishing Co, 2023
4. Jain M.P., Indian Constitutional Law,Nagpur : Wadha and Company, 2023
5. Manual of Parliamentary Procedure, Legislation, Published by the Ministry of Parliamentary Affairs, Government of India
6. M.V. Pyle, India's Constitution, Asia Publishing House, New Delhi
7. Kesavanand Bharti vs State of Kerala, AIR 1973 SC 1461
8. Minerva Mills Ltd. vs UOI, AIR 1980 SC 1789 : (1980)2 SCC 222
9. Indira Gandhi vs. Rajnarain, AIR 1975 SC 229 : (1975) 3 SCC 34
10. D.D. Basu, Constitutional Law, 2023
11. M.P. Jain, Indian Constitutional Law, Nagpur, Wadha and Company, 2023
12. KC Wheare, Federal Government, 1951
13. Wheare, Modern Constitutions, 2nd Edn., 1966
14. Alexandrowicz, Constitutional Developments in India, 1957
15. Author's Commentary on the Constitution of India, 7th Edn.
16. Griffith, The Impasse of Democtacy 1939
17. Granville Austin, The Indian Constitution (1966)
18. Automobile Transport State of Rajasthan, AIR 1962 SC 1406 (1415-16)
19. Keshavananda UOI, AIR 1973 SC 1461
20. SR Bommai UOI, AIR 1994 SC 1918

Refrences

1. Kesavanand Bharti vs State of Kerala, AIR1973 SC 1461
2. Minerva Mills Ltd vs UOI, AIR 1980 SC 1789 : (1980)2 SCC 222
3. Indira Gandhi vs. Rajnarain, AIR 1975 SC 229 : (1975) 3 SCC 34
4. D.D. Basu, Constitutional Law, 2023
5. M.P. Jain, Indian Constitutional Law,Nagpur, Wadha and Company, 2023
6. Dr. J.N. Pandey, The Constitutional Law of India, CLA, Allahabad, 2023
7. M.V. Pyle, India's Constitution, Asia Publishing House, New Delhi
8. AIR 1951 SC 458, 9. AIR 1965 SC 845, 10. AIR 1967 SC1643, 11. AIR 1973 SC1461, 12. AIR 1975 SC 2299, 13. AIR 1980 SC 1789
14. Bakshi P. M, The Constitution of India,Universal Law Publishing Co, 2023.
15. AIR 1951 SC 458, 16. Supra-1, 17. AIR 1965 SC 845.
18. M.P. Jain, Indian Constitutional Law, Nagpur; Wadha and Company, 2023.
19. Bakshi P. M, The Constitution of India,Universal Law Publishing Co, 2023.
20. Dr. J. N. Pandey, The Constitutional Law of India, CLA, Allahabad,2023.
21. Dr. J. N. Pandey, The Constitutional Law of India, CLA, Allahabad, 2023.
22. AIR 1973 SC 1461

डॉ. रेणुवती राजपुरोहित

भारत-पाकिस्तान के बीच सिंधु जल समझौता : वर्तमान ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

सिंधु जल समझौता अभी चर्चा में है क्योंकि हाल ही में पाकिस्तान द्वारा कश्मीर के पहलगाँव के बैसरन घाटी में आंतकवादी हमले में 26 भारतीय नागरिकों की जान जाने के बाद भारत ने इस समझौते को अपने पक्ष में निलंबित कर दिया है।

भारत और पाकिस्तान के बीच सिंधु जल समझौते को पानी साझा करने के एक सफल समझौते के तौर पर देखा गया है जिसमें सिंधु नदी प्रणाली के पानी के वितरण के लिए नियम बनाए गए थे।

1947 में विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान में पानी के बँटवारे को लेकर विवाद शुरू हो गया। 1949 में अमेरिकी विशेषज्ञ टेनसी वैली अथॉरिटी के पूर्व प्रमुख डेविड ललियंथल ने विवाद समाप्त करने का प्रयास किया। इसके पश्चात् सितंबर 1951 में विश्व बैंक के तत्कालीन अध्यक्ष यूजीन राबर्ट ने इसमें मध्यस्थता की। कई बैठकों के बाद 1960 में ये सिंधु जल संधि भारत और पाकिस्तान के बीच हस्ताक्षरित की गई। इस समझौते पर भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खान के द्वारा हस्ताक्षर किए गए। 12 जनवरी, 1961 को इस संधि के प्रावधान व शर्तें लागू की गई। संधि में तय किया गया कि पूर्वी क्षेत्र की तीन नदियों रावी, व्यास और सतलुज पर भारत का अधिकार होगा, जबकि पश्चिमी क्षेत्र की नदियों सिंधु, चिनाब और झेलम का पानी पाकिस्तान को दिया जाएगा। इन पश्चिमी नदियों के पानी के इस्तेमाल पर भारत को कुछ सीमित अधिकार दिए गए जैसे बिजली बनाना, कृषि के लिए पानी का सीमित इस्तेमाल करना।

सिंधु, चिनाब और झेलम नदियों के कुल 16.80 करोड़ एकड़ फ़ीट पानी में से भारत को 3.30 एकड़ पानी दिया गया, जो कुल पानी का 20 प्रतिशत है। बाक़ी 80 प्रतिशत पानी पाकिस्तान को दिया गया। समझौते के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच एक स्थाई आयोग का गठन किया गया, जिसे सिंधु आयोग नाम दिया गया। दोनों तरफ से एक-एक आयुक्त इस समझौते के लिए नियुक्त किया गया और यही दोनों अपनी-अपनी सरकारों का प्रतिनिधित्व करेंगे।

सिंधु नदी प्रणाली पर भारत के प्रमुख बाँध

- **किशनगंगा (किशन गंगा नदी, झेलम की एक सहायक नदी) :** वर्ष 2018 से क्रियाशील, यह पाकिस्तान के मंगला बाँध की एक प्रमुख सहायक नदी के जल मार्ग में परिवर्तन करता है।
- **रतले (चिनाब) :** यह निर्माणाधीन है और इससे पाकिस्तान के पंजाब क्षेत्र में प्रवाह को और कम किया जा सकता है।
- **शाहपुरकंडी (रावी) :** इससे रावी नदी का जल भारतीय चैनलों की ओर मुड़ता है, जिससे पाकिस्तान की पहुँच सीमित हो जाती हैं।
- **उझ (रावी) :** एक नियोजित बाँध जिससे पाकिस्तान की जल की उपलब्धता को सीमित किया जा सकेगा।

अंतरराष्ट्रीय विधि के अंतर्गत सिंधु जल समझौता

अंतरराष्ट्रीय विधि के अंतर्गत जब द्विपक्षीय संधि हो या बहुपक्षीय संधि जो देशों के मध्य हस्ताक्षरित की जाती है तो संधियों के क़ानून पर वियना अभिसमय (कन्वेंशन) की पालना की जाती हैं। भारत और पाकिस्तान के बीच सिंधु जल समझौता एक द्विपक्षीय संधि है। भारत द्वारा संधि को निलंबित करना इसकी स्थापना के बाद से पहली बार है और भारत ने इस संधि को तब तक के लिए निलंबित कर दिया है जब तक पाकिस्तान सीमा पार आंतकवाद को समर्थन देना बंद नहीं कर देता है।

वियना कन्वेशन का अनुच्छेद 62 बुनियादी परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण एक संधि को समाप्त करने या निलंबित करने से संबंधित हैं। अनुच्छेद 62 किसी देश को किसी संधि से पीछे हटने या अस्वीकार करने की अनुमति देता है। यदि बुनियादी परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ है, बशर्ते कि उन परिस्थितियों का अस्तित्व पक्षों के लिए संधि से बँधे रहने के लिए सहमति का एक आवश्यक आधार था और परिवर्तन का प्रभाव दायित्वों के दायरे को मौलिक रूप से बदल देता है।

भारत ने वियना कन्वेशन का अनुच्छेद 62 के अनुसार ही इस संधि को निलंबित किया है क्योंकि जिस उद्देश्य और बुनियादी परिस्थितियों के अंतर्गत संधि की गई थी उनमें परिवर्तन होने पर संधि को निलंबित या समाप्त किया जा सकता है।

सिंधु जल समझौता निलम्बन के परिणाम

भारत-सिंधु जल संधि के निलम्बन से भारत को सिंधु नदी प्रणाली के प्रबधंन में अधिक लचीलापन प्राप्त होगा।

- भारत अब किशनगंगा (झेलम) जैसी परियोजनाओं पर जलाशयों की सफाई का काम मानसून के चरम समय का इंतजार किए बिना कर सकता है लेकिन संधि के अंतर्गत पहले ये अनिवार्य था।
- भारत पश्चिमी नदियों पर जल विद्युत परियोजनाओं को तेज़ी से आगे बढ़ा सकता है। अब भारत इन पश्चिमी नदियों पर किसी भी डिज़ाइन और परिचालन प्रतिबंधों को दरकिनार कर सकता है। इसके अलावा भारत की तरफ से किशनगंगा और रतले (चिनाब पर) पर चल रही परियोजनाओं पर पाकिस्तानी निरीक्षण को रोक सकता है।
- हालाँकि इस रोक से पाकिस्तान की जल आपूर्ति पर तत्काल प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि भारत के पास अभी इस प्रवाह को पूरी तरह से रोकने या मोड़ने के लिए बुनियादी ढाँचे का अभाव हैं।

पाकिस्तान-सिंधु जल संधि के निलंबन से पाकिस्तान की जल सुरक्षा को खतरा है क्योंकि इसकी 80 प्रतिशत कृषि भूमि इन नदियों पर निर्भर करती हैं। इससे खाद्य सुरक्षा, नगरीय जल आपूर्ति और विद्युत उत्पादन पर प्रभाव पड़ सकता है, इसके अलावा, पाकिस्तान के सकल घरेलू उत्पाद में सिंधु नदी तंत्र के 25 प्रतिशत योगदान के कारण आर्थिक अस्थिरता भी उत्पन्न हो सकती हैं।

क्यों अंतरराष्ट्रीय न्यायाधिकरण नहीं जा सकता यह विवाद?

सिंधु जल संधि के अंतर्गत कोई विवाद उभरता है भारत-पाकिस्तान के बीच तो उसे सुलझाने के लिए तीन स्तरीय तंत्र पहले से स्थापित हैं। ऐसे विवादों को सुलझाने के लिए पहले दोनों के बीच स्थापित संधि आयोग में परखा जाएगा। यहाँ हल न होने पर इस विवाद को विश्व बैंक की तरफ से नियुक्त तटस्थ विशेषज्ञों के पास भेजा जाएगा। यहाँ पर विवाद के न सुलझने पर इस मामले को स्थायी मध्यस्थता न्यायालय द्वारा सुलझाया जाता है। स्थायी मध्यस्थता न्यायालय द्वारा समाधान न होने पर हेग स्थित अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में ले जाया जाता है। परन्तु भारत ने अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में जाकर कहा है कि सिंधु जल समझौते का कोई विवादास्पद मामला लेकर आए तो हम उसको नहीं मानेंगे। अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के द्वारा उन्हीं मामलों को निपटाया जाता है जब दोनों पक्षकार सहमत होते हैं। इस तरह सिंधु जल संधि रोक मामले में पाकिस्तान की अपील पर अंतराष्ट्रीय न्यायालय मध्यस्थता नहीं कर सकता क्योंकि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय का अधिकार क्षेत्र पूरी तरह से राष्ट्रों की सहमति पर आधारित है, न कि किसी दायित्व पर।

विश्व बैंक की भूमिका और सिंधु जल समझौता

विश्व बैंक के पास भी सिंधु जल संधि में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं है। वह केवल दोनों पक्षों के लिए मध्यस्थ या सलाहकार की सीमित भूमिका निभा सकता है विश्व बैंक विवाद समाधान की सुविधा तो प्रदान कर सकता है, वह भी सिर्फ तटस्थ सलाहकार की हैसियत से।

चुनौतियाँ

भारत ने पहलगाँव आंतकी हमले के बाद सिंधु जल समझौता निलंबित करके पाकिस्तान के खिलाफ़ कठोर क़दम उठाया है। इस क़दम के जरिए भारत ने सीधे पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था पर चोट की हैं। भारत ने इस संधि को निलंबित तो कर दिया है पर जानने की बात ये है कि क्या हमारे पास वह ज़रूरी आधारभूत संरचना (इन्फ्रास्ट्रचर) है जिसके जरिए हम सिंधु जल संधि के निलम्बन के पश्चात् पाकिस्तान को दिया जा रहा पानी रोक सकते हैं या दिशा परिवर्तन करके मोड़ा जा सकता है।

इसके लिए वास्तविकता ये है कि भारत में फिलहाल 5-10 प्रतिशत से ज्यादा पानी नहीं रोका जा सकता है। बाँध और जलाशय के द्वारा पानी रोका जा सकता है किन्तु इनको बनाने में समय लगता है। भारत में इस समय 5,334 बड़े बाँध है और लगभग 447 बाँध निर्माणाधीन हैं।

सिंधु जल समझौते को निलंबित करने के बाद भारत के समक्ष कई चुनौतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं --

- **अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया :** समझौते को निलंबित करने से अंतरराष्ट्रीय समुदाय की प्रतिक्रिया हो सकती है, ख़ासकर विश्व बैंक की जिसने समझौते में मध्यस्थता की थी। भारत को विश्व बैंक और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों के साथ अपने संबंधों को संभालने की चुनौती का सामना करना पड़ सकता है।
- **पाकिस्तान की प्रतिक्रिया :** समझौते को निलंबित करने से पाकिस्तान की प्रतिक्रिया हो सकती है, जो अपने जल संसाधनों के हितों की रक्षा के लिए क़दम उठा सकता है। इससे दोनों देशों के बीच तनाव बढ़ सकता है।
- **जल संसाधनों का प्रबंधन :** समझौते को निलंबित करने से भारत को जल संसाधनों का प्रबंधन करने की चुनौती का सामना करना पड़ सकता है, ख़ासकर पश्चिमी नदियों के पानी के उपयोग के संबंध में।

सुझाव

सिंधु जल समझौते को निलंबित करने के पश्चात् भारत सिंधु नदी के पानी का उपयोग करने के लिए निम्नलिखित क़दम उठा सकता है --

1. भारत को जल संचयन परियोजनाएँ शुरू करनी चाहिए जो सिंधु नदी के पानी को संचय करने और उसका उपयोग करने के लिए डिज़ाइन की गई हैं।
2. भारत को बाँधों का निर्माण करना चाहिए जो सिंधु नदी के पानी को संचय करने और उसका उपयोग करने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं।
3. भारत को सिंचाई प्रणालियों का विकास करना चाहिए जो सिंधु नदी के पानी का उपयोग करके कृषि को बढ़ावा दे सकता है।

4. सिंधु नदी के पानी का उपयोग करके भारत कृषि उत्पादन में वृद्धि कर सकता है और आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकता है।
5. भारत जल संचयन परियोजनाओं से बिजली उत्पादन कर सकता है और आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकता है।
6. भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में आतंकवादी समूहों के लिए पाकिस्तान के द्वारा दिए जाने वाले समर्थन को उजागर करना चाहिए।
7. भारत को संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 51 का उपयोग करना चाहिए जिसमें आंतकवाद के खिलाफ़ सामूहिक कार्यवाही के बारे में उल्लेख है ताकि पाकिस्तान पर अधिक प्रतिबंध लगाने के लिए वैश्विक समर्थन जुटाया जा सके।

निष्कर्ष

सिंधु जल समझौते को एक सफल समझौते के तौर पर देखा जाता रहा हैं। इस समझौते को विश्व बैंक की मध्यस्थता में भारत-पाकिस्तान के बीच 1960 में हस्ताक्षरित किया गया था। इस समझौते के पश्चात् भारत-पाकिस्तान के बीच कई युद्ध और संघर्ष हुए हैं। इनमें से 1965 का भारत-पाकिस्तान युद्ध, 1971 का भारत-पाकिस्तान युद्ध और 1999 का कारगिल युद्ध प्रमुख युद्ध व संघर्ष हैं। इसके पश्चात् 14 फरवरी, 2019 को जम्मू-कश्मीर के पुलवामा जिले मे पाकिस्तान के द्वारा हमला किया गया था। भारत की ओर से नितिन गडकरी ने पुलवामा हमले के बाद पाकिस्तान को चेतावनी देते हुए कहा था कि अगर पाकिस्तान अपनी हरकतों से बाज नहीं आया, तो भारत उसके हिस्से का पानी भी रोक सकता है। उन्होंने कहा कि पाकिस्तान के साथ सिंधु जल समझौते के तहत आने वाली रावी, व्यास और सतलुज नदियों का पानी भारत अपने हिस्सें में डायवर्ट कर सकता है और इसका इस्तेमाल राजस्थान और पंजाब जैसे क्षेत्रें में किया जाएगा।

इन युद्धों और संघर्षों के बावजूद, सिंधु जल समझौता अभी भी कायम है जिसको लगभग 64 साल और 7 माह हो चुके हैं हालाँकि हाल ही में इसे निलंबित किया गया है। यह समझौता दोनों देशों के बीच जल संसाधनों के प्रबंधन के लिए एक महत्त्वपूर्ण ढाँचा प्रदान करता है। अब 22 अप्रैल, 2025 में पहलगाँव में हुए हमले के बाद, भारत ने सिंधु जल समझौते को निलंबित करने का फ़ैसला किया गया है। पाकिस्तान को 2019 में चेतावनी दी गयी थी परन्तु पाकिस्तान अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहा तो यह एक कठोर क़दम है जो भारत ने पाकिस्तान की हरकतों के जवाब में उठाया है।

अब वर्तमान में भारत के द्वारा इस समझौते को निलंबित करने के पश्चात् जो नदियाँ पाकिस्तान के हिस्से में रही उन पर किसी तरह की परियोजना बनाने के लिए पाकिस्तान की सहमति ज़रूरी नहीं हैं। इस समझौते के निलम्बन के पश्चात् भारत-पाकिस्तान को दिया जा रहा पानी रोक सकता है या नदियों का पानी मोड़ा जा सकता है। हालाँकि अभी भारत के पास पूरी तरह से जल रोकने की व्यवस्था नहीं हैं परन्तु भारत अब अपनी इच्छानुसार बाँध या जलाशय

बना सकता है। इसके अलावा, समझौते के निलंबन के पश्चात् भारत को अपने जल संसाधनों का अधिक उपयोग करने का अवसर मिल सकता है, जिससे देश की जल आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद मिल सकती हैं और भारत को आर्थिक लाभ हो सकता है क्योंकि वह अपने जल संसाधनों का अधिक उपयोग करके जल विद्युत परियोजनाओं से अधिक बिजली उत्पादन कर सकता है।

अतः सिंधु जल समझौते को निलंबित करना भारत का एक कठोर क़दम हो सकता है जिससे पाकिस्तान पर दबाब बढ़ सकता है और उसे अपनी नीतियों में बदलाव करने के लिए मज़बूर किया जा सकता है। इससे पाकिस्तान में बढ़ते हुए आंतकवाद के प्रभाव को नियंत्रित करने में मदद मिल सकती हैं। हालाँकि, यह भी महत्त्वपूर्ण है कि इस क़दम के परिणामस्वरूप दोनों देशों के बीच तनाव बढ़ सकता है और आगे की वार्ताओं पर असर पड़ सकता है।

❑

संदर्भ

1. drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/pahalgam-terror-attack-and-suspension-of-the-indus-waters-treaty
2. https://www.amarujala.com/india-news/indus-water-treaty-world-bank-india-pakisan-issue-know-implications-2025-04-23.
3. https://www.jagran.com/news/national-how-much-water-can-india-stop-from-pakistan-how-will-sindhu-jal-samjhauta-cause-damage-read-everything-23925305.html
4. amarujala.com/world/pakistan-surrounded-due-to-ban-on-indus-water-treaty-preparing-to-appeal-to-icj-will-be-defeated-here-also-2025-04-30

डॉ. अनिल कुमार

भारत के बदलते चेहरे में मौलिक अधिकारों का स्पंदन

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को आधारभूत मानवीय स्वतंत्रताएँ माना गया है, जिन्हें प्रत्येक भारतीय नागरिक को अपने व्यक्तित्व और जीवन के उचित तथा सामंजस्यपूर्ण विकास के लिए प्राप्त करने का अधिकार है। ये अधिकार भारत के सभी नागरिकों पर सार्वभौमिक रूप से लागू होते हैं, चाहे उनकी जाति, जन्म-स्थान, धर्म, जाति या लिंग कुछ भी हो। भारतीय संविधान अपने नागरिकों को ये बुनियादी अधिकार प्रदान करता है, जो प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास और मानवीय गरिमा को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। संविधान के भाग III के अनुच्छेद 12 से 35 में इन अधिकारों का उल्लेख किया गया है। ये अधिकार भारतीय नागरिकों को शांति और सद्भाव के साथ अपना जीवन जीने की स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं। इन्हें 'मौलिक' इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये व्यक्ति के सर्वांगीण विकास (भौतिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक) के लिए सबसे आवश्यक हैं और देश के मौलिक क़ानून, यानी संविधान द्वारा संरक्षित हैं। इनका उद्देश्य 'क़ानून का शासन' स्थापित करना है, न कि 'मनुष्य का शासन'। कई शोधों से पता चलता है कि 'व्यक्तित्व विकास' और 'मानवीय गरिमा' पर लगातार ज़ोर दिया गया है, जो भारत में मौलिक अधिकारों के एक मूल दार्शनिक आधार को दर्शाता है। यह केवल नागरिक स्वतंत्रता से परे जाकर व्यक्ति के समग्र विकास की एक समग्र दृष्टिकोण को समाहित करता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मौलिक अधिकारों की अवधारणा की उत्पत्ति प्राकृतिक क़ानून और प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांतों में खोजी जा सकती है। इस अवधारणा पर इंग्लैंड के बिल ऑफ राइट्स (1689), संयुक्त राज्य अमेरिका के बिल ऑफ राइट्स (1791), और फ्रांस की मानव अधिकारों की घोषणा (1789) जैसे ऐतिहासिक दस्तावेज़ों का गहरा प्रभाव पड़ा। भारत में मौलिक अधिकारों की पहली माँग 1895 में 'भारत का संविधान विधेयक' (स्वराज विधेयक) के रूप में सामने आई। एनी बेसेंट द्वारा तैयार किए गए कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल (1925) में सात मौलिक अधिकारों की माँग शामिल थी। 1928 की नेहरू आयोग की रिपोर्ट में सभी भारतीयों के लिए गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का प्रस्ताव किया गया था। 1931 में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आईएनसी) ने मौलिक नागरिक

और सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की रक्षा के लिए खुद को प्रतिबद्ध करते हुए प्रस्ताव पारित किए। संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूडीएचआर) को अपनाने से भी इन अधिकारों को शामिल करने पर प्रभाव पड़ा। ऐतिहासिक दस्तावेज़ों जैसे मैग्ना कार्टा, इंग्लिश बिल ऑफ राइट्स, यूएस बिल ऑफ राइट्स और फ्रांसीसी घोषणा का लगातार संदर्भ एक वैश्विक बौद्धिक विरासत को इंगित करता है जिसने मौलिक अधिकारों की भारतीय समझ को आकार दिया। 1895 में पहली माँग से लेकर 1931 में आईएनसी की प्रतिबद्धता तक का विकास एक बढ़ती हुई राष्ट्रवादी चेतना और स्वशासन के लिए मौलिक अधिकारों की आवश्यकता की स्पष्ट अभिव्यक्ति को दर्शाता है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने स्वतंत्रता के लक्ष्यों के रूप में स्वतंत्रता और सामाजिक कल्याण को प्राप्त करने का प्रयास किया। माँगों में क़ानून के समक्ष समानता, भाषण की स्वतंत्रता और नागरिक अधिकारों तथा आर्थिक स्वतंत्रता की सुरक्षा शामिल थी। संविधान सभा द्वारा नियुक्त मौलिक अधिकारों पर सलाहकार समिति ने इन अधिकारों का मसौदा तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जे.बी. कृपलानी की अध्यक्षता वाली मौलिक अधिकार उप-समिति ने प्रारंभिक प्रस्ताव तैयार किए। मसौदा तैयार करने में स्वतंत्रता-पूर्व सामाजिक असमानताओं जैसे अस्पृश्यता को समाप्त करने की इच्छा का प्रभाव था। मौलिक अधिकारों को इसलिए शामिल किया गया क्योंकि उन्हें व्यक्तिगत विकास और मानवीय गरिमा को बनाए रखने के लिए आवश्यक माना गया था। अस्पृश्यता जैसी स्वतंत्रता-पूर्व सामाजिक असमानताओं को समाप्त करने का स्पष्ट उद्देश्य भारतीय संदर्भ का एक अनूठा पहलू प्रकट करता है, जहाँ मौलिक अधिकार न केवल राज्य के विरुद्ध व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बारे में थे, बल्कि सामाजिक न्याय और भेदभावपूर्ण प्रथाओं को समाप्त करने के बारे में भी थे।

संविधान सभा में मौलिक अधिकारों पर बहस

संविधान सभा ने मौलिक अधिकारों को शामिल करने और उनके दायरे पर व्यापक रूप से बहस की। इस बात पर चर्चा हुई कि क्या मौलिक अधिकार न्यायोचित (अदालतों द्वारा लागू करने योग्य) होने चाहिए या ग़ैर-न्यायोचित (शासन के लिए निर्देश)। संपत्ति के अधिकार (जिसे बाद में हटा दिया गया) जैसे विशिष्ट अधिकारों पर भी बहस हुई। मौलिक अधिकारों पर लगाई जा सकने वाली सीमाओं और प्रतिबंधों पर भी चर्चा हुई। मौलिक अधिकारों में विधायी हस्तक्षेप की संभावना के बारे में चिंताएँ उठाई गईं। बहसों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारंटी और सार्वजनिक व्यवस्था तथा राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित करने के बीच संतुलन झलकता है। मौलिक अधिकारों को न्यायोचित और ग़ैर-न्यायोचित भागों में विभाजित करना संविधान निर्माताओं द्वारा एक व्यावहारिक दृष्टिकोण को दर्शाता है, जिसका उद्देश्य कुछ मूल अधिकारों की तुरंत गारंटी देना है, जबकि राज्य के लिए समय के साथ निर्देशक सिद्धांतों के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित करना है। संपत्ति के अधिकार को लेकर

हुई ज़ोरदार बहस व्यक्तिगत संपत्ति अधिकारों और भूमि सुधार तथा विकास के लिए राज्य की आवश्यकता के बीच तनाव को उजागर करती है, ख़ासकर एक नव स्वतंत्र राष्ट्र में महत्त्वपूर्ण आर्थिक असमानताओं के साथ।

मौलिक अधिकारों का अंतिम मसौदा सभा के भीतर विभिन्न दृष्टिकोणों के बीच एक समझौता था। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक आवश्यकताओं को संतुलित करने के लिए उचित प्रतिबंध शामिल किए गए थे। अन्य मौलिक अधिकारों की प्रवर्तनीयता सुनिश्चित करने के लिए संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32) शामिल करना एक महत्त्वपूर्ण समझौता था। अनुच्छेद 32ए संवैधानिक उपचारों का अधिकार, जिसे अंबेडकर ने "संविधान की हृदय और आत्मा' कहा था, को शामिल करना मौलिक अधिकारों को वास्तव में प्रभावी बनाने के लिए संविधान निर्माताओं की प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है; जिससे नागरिकों को उनके उल्लंघन के लिए उच्चतम न्यायालयों से सीधे निवारण माँगने का मार्ग प्रशस्त होता है।

मौलिक अधिकारों का मूल चार्टर

संविधान के प्रारंभ में सात मौलिक अधिकार थे।

- **समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18) :** क़ानून के समक्ष समानता, भेदभाव का निषेध, सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता, अस्पृश्यता का उन्मूलन और उपाधियों का उन्मूलन।
    - अनुच्छेद 14 : क़ानून के समक्ष समानता और क़ानूनों का समान संरक्षण।
    - अनुच्छेद 15 : धर्म, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध।
    - अनुच्छेद 16 : सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता।
    - अनुच्छेद 17 : अस्पृश्यता का उन्मूलन।
    - अनुच्छेद 18 : उपाधियों का उन्मूलन।
- **स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22) :** भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सभा, संगठन, आंदोलन, निवास और पेशे की स्वतंत्रता, अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण, जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण, और कुछ मामलों में गिरफ्तारी और हिरासत के खिलाफ़ संरक्षण।
    - अनुच्छेद 19 : भाषण आदि की स्वतंत्रता के संबंध में कुछ अधिकारों का संरक्षण।
    - अनुच्छेद 20 : अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण।
    - अनुच्छेद 21 : जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण।
    - अनुच्छेद 22 : कुछ मामलों में गिरफ्तारी और हिरासत के खिलाफ़ संरक्षण।
- **शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24) :** मानव दुर्व्यापार और बँधुआ मजदूरी का निषेध, और कारखानों आदि में बच्चों के रोजगार का निषेध।
    - अनुच्छेद 23 : मानव दुर्व्यापार और बँधुआ मजदूरी का निषेध।
    - अनुच्छेद 24 : कारखानों आदि में बच्चों के रोजगार का निषेध।

- **धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)**
    - अनुच्छेद 25 : अंतःकरण की स्वतंत्रता और धर्म को स्वतंत्र रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार।
    - अनुच्छेद 26 : धार्मिक मामलों के प्रबंधन की स्वतंत्रता।
    - अनुच्छेद 27 : किसी विशेष धर्म को बढ़ावा देने के लिए करों के भुगतान के संबंध में स्वतंत्रता।
    - अनुच्छेद 28 : कुछ शैक्षणिक संस्थानों में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक पूजा में उपस्थिति के संबंध में स्वतंत्रता।
- **सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30) :** अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण और अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार।
    - अनुच्छेद 29 : अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण।
    - अनुच्छेद 30 : अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार।
- **संपत्ति का अधिकार (अनुच्छेद 31) :** (1978 में 44वें संशोधन द्वारा निरस्त)।
- **संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32-35)**

बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण जैसे रिटों के माध्यम से मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उच्चतम न्यायालय में जाने का अधिकार।

- अनुच्छेद 32 : इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उपचार।
- अनुच्छेद 33-35 : सशस्त्र बलों आदि पर इन अधिकारों के अनुप्रयोग से संबंधित प्रावधान।

अनुच्छेद 19 के तहत स्वतंत्रता के अधिकार के तहत विशिष्ट स्वतंत्रताओं का विस्तृत विवरण संविधान निर्माताओं के एक व्यापक स्वतंत्रता चार्टर प्रदान करने के इरादे को दर्शाता है, जो ऐतिहासिक मिसालों से सीख रहा है और एक नव स्वतंत्र राष्ट्र की विशिष्ट ज़रूरतों को संबोधित कर रहा है। अल्पसंख्यकों के लिए सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों (अनुच्छेद 29-30) को शामिल करना भारत के विविध सांस्कृतिक और भाषाई ताने-बाने की रक्षा करने और यह सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता को उजागर करता है कि अल्पसंख्यक समूहों को अपनी पहचान बनाए रखने और अपने स्वयं के शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने का अधिकार है।

संशोधनों के माध्यम से विकास

संपत्ति के अधिकार को 1978 में 44वें संशोधन द्वारा मौलिक अधिकार के रूप में हटा दिया गया था और इसे अनुच्छेद 300ए के तहत क़ानूनी अधिकार बना दिया गया था। मौलिक अधिकार के रूप में संपत्ति के अधिकार को हटाना व्यक्तिगत अधिकारों और सामाजिक-आर्थिक सुधारों को आगे बढ़ाने के लिए राज्य की शक्ति के बीच संतुलन में एक बड़ा बदलाव दर्शाता है, जो

विकास प्राथमिकताओं की विकसित समझ को दर्शाता है। शिक्षा के अधिकार को 2002 में 86वें संशोधन द्वारा एक मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 21ए) के रूप में जोड़ा गया था। शिक्षा के अधिकार को एक मौलिक अधिकार के रूप में जोड़ना मानव विकास और सशक्तिकरण के लिए शिक्षा की बढ़ती मान्यता को रेखांकित करता है, जिससे राज्य बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए बाध्य होता है। अन्य संशोधनों ने भी मौलिक अधिकारों में संशोधन या जोड़ा है, जो संविधान की गतिशील प्रकृति को दर्शाता है। गोलकनाथ मामले से पहले पहला, चौथा, सातवाँ और सोलहवाँ संशोधन किया गया था। इसके बाद चौबीसवाँ, पच्चीसवाँ, बयालीसवाँ, चौवालीसवाँ, पचासवाँ, सतहत्तरवाँ, इक्कासीवाँ, पचासीवाँ, छियासीवाँ, तिरानवेवाँ और संतानवेवाँ संशोधन किया गया। मौलिक अधिकारों को प्रभावित करने वाले संशोधनों की संख्या बदलती सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक वास्तविकताओं के जवाब में इन अधिकारों के दायरे और व्याख्या के संबंध में चल रहे संवाद और प्रतियोगिता को उजागर करती है।

न्यायिक व्याख्या और मौलिक अधिकारों का विस्तार

न्यायपालिका न्यायिक समीक्षा के माध्यम से मौलिक अधिकारों की रक्षा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उच्चतम न्यायालय किसी भी क़ानून को असंवैधानिक घोषित कर सकता है यदि वह मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है (अनुच्छेद 13)। जनहित याचिका (पीआईएल) की अवधारणा ने मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए न्याय तक पहुँच के विस्तार की अनुमति दी है। उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) की व्याख्या को स्वच्छ हवाएँ स्वास्थ्य, आश्रय, शिक्षा और एक गरिमामय जीवन के अधिकार को शामिल करने के लिए व्यापक बनाया है। **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)**, के ऐतिहासिक फ़ैसले में उच्चतम न्यायालय ने बुनियादी संरचना सिद्धांत स्थापित किया, जिसने संसद की मौलिक अधिकारों सहित संविधान की मौलिक विशेषताओं में संशोधन करने की शक्ति को सीमित कर दिया। जस्टिस के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ (2017) के ऐतिहासिक फ़ैसले में उच्चतम न्यायालय ने निजता के अधिकार को अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार घोषित किया। उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) की व्याख्या का एक गरिमामय जीवन के विभिन्न पहलुओं को शामिल करने के लिए विकास मानवीय गरिमा और कल्याण की समकालीन समझ के लिए मौलिक अधिकारों को अनुकूलित करने में न्यायिक व्याख्या की गतिशील और विस्तृत भूमिका का उदाहरण देता है। केशवानंद भारती मामले में बुनियादी संरचना सिद्धांत की स्थापना मौलिक अधिकारों के लिए एक महत्त्वपूर्ण सुरक्षा उपाय के रूप में कार्य करती है, यह सुनिश्चित करती है कि इन अधिकारों सहित संविधान के मूल सिद्धांतों को संसदीय संशोधनों द्वारा निरस्त नहीं किया जा सकता है। पुट्टस्वामी मामले में अनुच्छेद 21 के तहत निजता के अधिकार की मान्यता बदलती सामाजिक ज़रूरतों और तकनीकी प्रगति के प्रति न्यायपालिका की भूमिका को उजागर करती है, यह सुनिश्चित करती है कि मौलिक अधिकार डिजिटल युग में प्रासंगिक बने रहें।

बदलते भारत में मौलिक अधिकार

आधुनिक भारत में न्याय, समानता और बँधुत्व को बढ़ावा देने के लिए मौलिक अधिकार महत्त्वपूर्ण हैं। वे राज्य की मनमानी कार्रवाई से व्यक्तियों की रक्षा करते हैं। वे सत्तावादी शासन की स्थापना को रोकते हैं। वे सामाजिक न्याय और समानता सुनिश्चित करते हैं। वे अल्पसंख्यकों और समाज के कमजोर वर्गों के अधिकारों की रक्षा करते हैं। वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता सुनिश्चित करते हैं। समकालीन चुनौतियों में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को कम करने के लिए क़ानूनों का दुरुपयोग, और डिजिटल युग में निजता के अधिकार के बारे में चिंताएँ शामिल हैं। सत्तावाद को रोकने और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में मौलिक अधिकारों की भूमिका पर लगातार ज़ोर भारत के लोकतांत्रिक ताने-बाने को बनाए रखने और लगातार असमानताओं को दूर करने में उनके स्थायी महत्त्व को रेखांकित करता है। स्वतंत्र भाषण को कम करने के लिए क़ानूनों के दुरुपयोग और डिजिटल गोपनीयता के बारे में चिंताओं जैसी नई चुनौतियों का उद्‌भव आधुनिक भारत की जटिलताओं को दूर करने के लिए मौलिक अधिकारों की व्याख्या और प्रवर्तन में चल रही सतर्कता और अनुकूलन की आवश्यकता को इंगित करता है।

अधिकारों और कर्त्तव्यों का संतुलन

संविधान में मौलिक कर्त्तव्य (अनुच्छेद 51ए) भी शामिल हैं, जिन्हें 1976 में 42वें संशोधन द्वारा जोड़ा गया था। मौलिक कर्त्तव्य देश के प्रति नागरिकों के नैतिक दायित्व हैं। मौलिक अधिकारों के विपरीत, वे सीधे क़ानून द्वारा लागू करने योग्य नहीं हैं। हालाँकि, अदालतें क़ानूनों और मौलिक अधिकारों की व्याख्या करते समय मौलिक कर्त्तव्यों पर विचार कर सकती हैं। मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्त्तव्यों (दायित्व) के बीच एक बुनियादी अंतर है। अधिकार तभी सार्थक होते हैं जब उनका कर्त्तव्य की भावना के साथ प्रयोग किया जाए। मौलिक अधिकारों के साथ मौलिक कर्त्तव्यों को शामिल करना नागरिकता का एक समग्र दृष्टिकोण दर्शाता है जो न केवल व्यक्तिगत अधिकारों बल्कि राष्ट्र और साथी नागरिकों के प्रति ज़िम्मेदारियों पर भी ज़ोर देता है, जिसका उद्देश्य अधिकारों और दायित्वों के बीच संतुलन बनाना है। मौलिक कर्त्तव्य सीधे लागू करने योग्य नहीं होने पर भी, क़ानूनों और अधिकारों की व्याख्या के दौरान अदालतों द्वारा उन पर विचार भारतीय संदर्भ में अधिकारों और कर्त्तव्यों की परस्पर संबद्धता को उजागर करते हुए क़ानूनी और संवैधानिक परिदृश्य पर एक अप्रत्यक्ष लेकिन महत्त्वपूर्ण प्रभाव का सुझाव देता है।

निष्कर्ष

भारत में मौलिक अधिकारों का विकास एक लंबी और गतिशील प्रक्रिया रही है। ऐतिहासिक जड़ों से लेकर संविधान सभा की बहसों तक, मूल चार्टर से लेकर संशोधनों और न्यायिक व्याख्याओं तक, इन अधिकारों ने बदलते भारत के साथ विकसित और विस्तारित किया है। वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक शासन के लिए आधारशिला बने हुए हैं। संपत्ति के अधिकार को हटाने और शिक्षा के अधिकार को जोड़ने जैसे प्रमुख संशोधनों ने राज्य की बदलती

प्राथमिकताओं और सामाजिक आवश्यकताओं को दर्शाया है। उच्चतम न्यायालय ने अपनी सक्रिय न्यायिक भूमिका के माध्यम से इन अधिकारों के दायरे और अर्थ को लगातार विस्तृत किया है, जिसमें जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या भी शामिल है ताकि एक गरिमामय जीवन के विभिन्न पहलुओं को शामिल किया जा सके और निजता के अधिकार को मान्यता दी जा सके।

फिर भी, भारत को आज भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जो मौलिक अधिकारों के पूर्ण अहसास को ख़तरे में डालती हैं, जिनमें भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को कम करने के लिए क़ानूनों का दुरुपयोग और डिजिटल युग में निजता के अधिकार के बारे में चिंताएँ शामिल हैं। इन चुनौतियों का समाधान करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि मौलिक अधिकार सभी नागरिकों के लिए प्रभावी रूप से संरक्षित और लागू किए जाएँ, निरंतर सतर्कता, क़ानूनी सुधार और सामाजिक जागरूकता की आवश्यकता है।

मौलिक अधिकार वास्तव में भारतीय संविधान की धड़कन हैं। वे न केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं बल्कि सामाजिक न्याय और समानता को भी बढ़ावा देते हैं। जैसे.जैसे भारत विकसित हो रहा है, इन अधिकारों की व्याख्या और अनुकूलन की आवश्यकता बनी रहेगी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे देश के सभी नागरिकों के लिए स्वतंत्रता, गरिमा और न्याय के प्रतीक बने रहें।

❑

संदर्भ

1. प्रोफाइल, मौलिक अधिकार, भारत को जानें, (knowindia.india.gov.in/profile/fundamental-rights.php)
2. भारत में मौलिक अधिकार, विकिपीडिया (en.wikipedia.org/wiki/Fundamental_rights_in_India)
3. भारत के संविधान के मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 12-35), Study.IQ (studyiq.com/articles/fundamental-rights-of-indian-constitution)
4. मौलिक अधिकाररू अर्थ, विशेषताएँ, महत्त्व और आलोचना, NEXT IAS (nextias.com/blog/fundamental-rights)
5. मौलिक अधिकार और मौलिक कर्त्तव्य, एसआरआर और सीवीआर सरकारी डिग्री कॉलेज, (srrcvr.ac.in/pages.php?menu=best-practices&slug=fundamental-right)
6. भारत के मौलिक अधिकार, निर्देशक सिद्धांत और मौलिक कर्त्तव्य, विकिपीडिया, (en.wikipedia.org/wiki/Fundamental_Rights,_Directive_Principles_and_Fundamental_Duties_of_India)

शेष पृष्ठ 138 पर

सन्तोष खन्ना

आप्रवास और विदेशियों विषयक अधिनियम, 2025 : कितना रहेगा प्रभावी?

भारत की संसद ने लोकसभा में 11 मार्च, 2025 को आप्रवास और विदेशियों विषयक विधेयक पेश किया था। लोकसभा में पारित होने के बाद राज्य सभा ने भी इस विधेयक को 2 अप्रैल, 2025 को पारित कर दिया और राष्ट्रपति ने इस पर 4 अप्रैल, 2025 को अपनी सहमति दे दी और भारत सरकार ने इसे उसी दिन राजपत्र में अधिसूचित कर दिया जिससे यह विधेयक सारे देश के लिए क़ानून बन गया है। यद्यपि भारत को स्वतंत्र हुए आठ दशक होने को हैं इस विषय पर कोई नया क़ानून नहीं बनाया गया था। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य भारत में प्रवेश, निवास और प्रस्थान को विनियमित करना है। यहाँ आने वाले लोगों के पास विधिमान्य पासपोर्ट और वीज़ा होना अनिवार्य है। आप्रवास और विदेशियों विषयक अधिनियम, 2025 बनने के साथ ही इस संबंध में पहले से बने क़ानूनों को रद्द कर दिया गया है। रद्द होने वाले क़ानून पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम, 1920, विदेशी पंजीकरण अधिनियम, 1939, विदेशी अधिनियम, 1946 और आप्रवास (वाहक दायित्व) अधिनियम, 2001 हैं जिनमें से कुछ बातों को इस वर्तमान क़ानून में समेकित किया गया है।

आप्रवास और विदेशियों विषयक अधिनियम, 2025 के संबंध में विस्तार से बताने से पहले यह बताना समीचीन होगा कि भारत चाहता है कि इस क़ानून के माध्यम से न केवल पर्यटकों आदि के भारत के आगमन को सुविधाजनक बनाया जाए बल्कि व्यापारियों आदि को भी यहाँ आकर निवेश करने, बिज़नेस करने आदि को सरल बनाया जा सके। इसके अलावा, विभिन्न देशों के छात्र भी यहाँ अध्ययन और शोध के लिए आ सकें और साथ ही लोगों को अवैध रूप से भारत में आने और बिना अनुमति से यहाँ रहने से रोका जा सके और जो भी विदेशी यहाँ रहना चाहता है वह उस अवधि के दौरान यहाँ के नियमों का विधिवत् रूप से पालन करें और क़ानून का किसी प्रकार से उल्लंघन न करें।

जिस तरह से इस क़ानून में विदेशियों के लिए स्पष्ट प्रावधान किए गए हैं उससे भारत की वैश्विक स्तर पर एक विशिष्ट पहचान बनेगी और व्यापार आदि की दृष्टि से यहाँ आने वाले विदेशियों का भारत में प्रवेश, निवास और प्रस्थान भी सुलभ तरीक़े से विनियमित हो सकेगा।

संसद में क़ानून बनाते समय कुछ विपक्षी सांसदों ने इस क़ानून का यह कहकर विरोध

किया था कि इस क़ानून से कुछ लोगों के अधिकारों का हनन होगा क्योंकि सरकार सुरक्षा कारणों से नहीं बल्कि राजनीतिक मान्यताओं के आधार पर भारत में कुछ लोगों को आने से रोक सकती है। अगर किसी को बिना किसी उचित कारण से देश में प्रवेश से वंचित किया जाता है तो उनको समस्या हो सकती है। उनका तो यहाँ तक कहना था कि इस क़ानून से विदेशी छात्रों, डॉक्टर और शोध कर्ताओं के लिए भारत आना मुश्किल हो सकता है। इसके अलावा, भारत में शरणार्थी भी शरण नहीं ले पाएँगे। विपक्ष इस विधेयक को संसदीय समिति को प्रेषित करने की माँग भी करता रहा किंतु संसद से अंततः यह पारित हो लागू हो गया है। सरकार ने इस क़ानून में यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि भारत में अवैध आप्रवास पर अंकुश लगाया जा सके क्योंकि भारत में अवैध प्रवास, न केवल विशेष रूप से असम, बंगाल और सीमावर्ती राज्यों में यह बहुत बड़ी समस्या है बल्कि ग़ैर-क़ानूनी ढंग से यहाँ आए व्यक्तियों ने यहाँ बहुत बड़ी समस्या खड़ी कर रखी है। इतिहास गवाह है कि भारत में अवैध रूप से अनेक विदेशी रह रहे हैं जिसके कारण भीड़भाड़ के अलावा सुरक्षा संबंधी ख़तरे और सामाजिक तनाव और समस्याएँ पैदा होती रहती हैं। अतः भारत सरकार को अवैध प्रवास को नियंत्रित करने, अपने नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक अच्छे प्रवास संबंधी क़ानून की आवश्यकता थी इसलिए इस क़ानून में यह सुनिश्चित किया गया है कि भारत में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों के पास वैध पासपोर्ट, यात्रा दस्तावेज़ होने चाहिए और विदेशियों के पास वैध वीज़ा भी होना चाहिए जब तक कि उन्हें इस संबंध में छूट न दी गई हो। यह क़ानून राष्ट्रीय सुरक्षा, संप्रभुता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और विदेशी संबंधों के लिए ख़तरा पैदा करने वाले विदेशियों को प्रवेश से वर्जित करता है।

आप्रवास और विदेशियों विषयक अधिनियम, 2025 को कुल पाँच भागों में बाँटा गया है और इसमें कुल 36 धाराएँ रखी गई हैं। इसके पहले भाग में धारा 2 में इस अधिनियम में प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण शब्दावली पारिभाषित की गई है। इसमें 'विदेशी' शब्द को ऐसे परिभाषित किया गया है जो व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं है वह विदेशी है। 'वास सुविधा' चलाने वाला वास सुविधा के प्रबंधन का भार साधक व्यक्ति अभिप्रेत है औद उसमें वास सुविधा चलाने वाले के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए उसके द्बारा अभिप्रेत व्यक्ति है। वास्तव में इस क़ानून में जिन होटल आदि में विदेशी अपने प्रवास के दौरान ठहरते हैं, उनके प्रभारियों को उनके ठहरने की हर प्रकार की सूचना देना अनिवार्य कर दिया गया है।

इस अधिनियम के भाग दो में विदेशियों के देश में आप्रवास के बारे में धारा 3 से लेकर धारा 5 तक प्रावधान किए गए हैं। धारा 3 के अनुसार भारत से बाहर से किसी स्थान से चलने वाला कोई भी व्यक्ति अथवा भारत में निवास करने वाला अथवा प्रस्थान करने वाले व्यक्ति भारत में वायु, जल या भूमि द्वारा भारत में तभी प्रवेश, निवास अथवा प्रस्थान कर सकते हैं अगर उनके पास विधिमान्य पासपोर्ट अथवा अन्य विधिमान्य यात्रा दस्तावेज़ अथवा विधिमान्य वीज़ा होगा। जब तक वह भारत में ठहरेगा, उसे विधिमान्य पासपोर्ट, वैध यात्रा दस्तावेज़ और वैध वीज़ा दिखाना

आवश्यक होगा। जब वह भारत से प्रस्थान करेगा तो उसको यह सभी वैध दस्तावेज़ दिखाने होंगे। इन शर्तों से उसे इस क़ानून की धारा 33 के अंतर्गत अथवा अंतर शासकीय कारण से छूट दी जा सकती है। इसी धारा में एक परंतुक यह भी जोड़ा गया है कि चाहे उसके पास यह सभी अपेक्षित विधिमान्य दस्तावेज़ हों, अगर केंद्र सरकार को लगता है कि वह राष्ट्रीय सुरक्षा, देश की संप्रभुता और अखंडता के लिए ख़तरा साबित हो सकता है या किसी विदेशी सरकार से संबंध में अथवा लोक स्वास्थ्य अथवा अन्य किसी आधार पर उसे प्रवेश और प्रस्थान की अनुमति नहीं दी जाएगी। इस संबंध में आप्रवास अधिकारी का निर्णय अंतिम होगा।

धारा 5 में यह भी प्रावधान है कि भारत सरकार विदेशियों के प्रवेश और प्रस्थान के लिए निर्धारित स्थलों पर आप्रवास चौकियाँ स्थापित करेगी और इसका प्रबंधन निर्धारित आप्रवास अधिकारी करेंगे। धारा 5 के अंतर्गत भारत सरकार ने केंद्रीय अप्रवास के उद्देश्यों के लिए एक केंद्रीय आप्रवास ब्यूरो की स्थापना भी कर दी है और उसके संचालन के लिए एक आयुक्त की नियुक्ति भी कर दी गई है।

इस अधिनियम के भाग तीन में 6 से लेकर 16 तक की धाराएँ हैं अर्थात् यह भाग सब से बड़ा है और इसमें भारत में आने वाले विदेशियों के प्रवेश, निवास और प्रस्थान आदि के संबंध में महत्त्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। धारा 6 में यह प्रावधान है कि भारत में प्रवेश करने वाले हर विदेशी को रजिस्ट्रीकरण अधिकारी के पास स्वयं को अनिवार्यता रजिस्टर करवाना होगा। धारा 7 में केंद्र सरकार को यह अधिकार है कि विदेशियों के भारत में आगमन, निवास और प्रस्थान के दौरान उनके संबंध में आवश्यक आदेश जारी कर सकती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस अधिनियम के अंतर्गत भारत में आने वाले सभी विदेशियों को निर्धारित रजिस्ट्रीकरण अधिकारी के पास निर्धारित समय और प्रक्रिया के अनुसार रजिस्टर करना अनिवार्य होगा। इसके अलावा, विदेशी जिन होटल आदि में निवास करते हैं उन वास सुविधाएँ देने वाले सभी मालिकों एवं संचालकों को भी रजिस्ट्रीकरण अधिकारी के पास यह रजिस्टर करवाना होगा कि उनकी वास सुविधा में कोई विदेशी कितने दिन ठहरा या ठहरेगा। यही नहीं, देश के हर अस्पताल और नर्सिंग होम आदि में इलाज़ करवाने के लिए आने वाले विदेशियों के बारे में भी अस्पतालों आदि को विदेशी रोगियों और उनके परिचरों के प्रवास और शयन संबंधी सुविधाओं के बारे में सभी प्रकार का ब्यौरा देना होगा। इसी प्रकार, देश के विश्वविद्यालय आदि सभी शिक्षण संस्थानों में अध्ययन और शोध के लिए आने वाले विदेशी छात्रों के प्रवेश आदि के बारे में भी आवश्यक सूचना रजिस्ट्रीकरण अधिकारी को देना अनिवार्य होगा।

इसके अलावा, यह अधिनियम यह भी प्रावधान करता है कि विदेशी किसी संरक्षित या निर्बंधित क्षेत्र या प्रतिषिद्ध क्षेत्र में भ्रमण नहीं कर सकेंगे अथवा किन्हीं शर्तों के अधीन ऐसे क्षेत्रों में भ्रमण कर सकेंगे। विदेशी भारत में केवल अनुमत अवधि के लिए ही ठहर सकेंगे। यदि कोई विदेशी कभी इस शर्त का उल्लंघन करते हुए पाए जाएगा उसको क़ानून द्वारा विहित दंड से दंडित किया जा सकेगा।

इस अधिनियम की धारा 15 में यह प्रावधान है कि यदि किसी ऐसे परिसर में, जहाँ विदेशी बार-बार आते-जाते हैं तो सिविल अधिकारी उस परिसर के स्वामी अथवा संचालक को उस परिसर को हमेशा के लिए अथवा किसी निर्धारित कालावधि के लिए बंद करने अथवा उसे निर्धारित की गई शर्तों के अधीन चलाने के लिए कह सकता है। ऐसे परिसर में ऐसे विदेशियों के प्रवेश पर प्रतिबंध भी लगाया जा सकता है जो उस परिसर में बार-बार आते-जाते रहते हैं। ऐसे परिसरों को सिविल अधिकारी द्वारा अनुमत प्रयोजनों के लिए ही प्रयुक्त करने की अनुमति दी जा सकेगी। यदि किसी परिसर का स्वामी अथवा संचालक सिविल अधिकारी के किसी आदेश से व्यथित हो तो वह केंद्र सरकार को 30 दिन के भीतर लिख कर अपील कर सकता हैं किंतु उस अपील पर केंद्र सरकार द्वारा दिया गया फ़ैसला अंतिम होगा।

यदि कोई विदेशी दो देशों का नागरिक हो तो यह कैसे पता चलेगा कि वह किस देश के नागरिक की हैसियत से भारत का भ्रमण करने के लिए आया है। इसके लिए यह प्रावधान किया गया है कि अगर ऐसा कोई विदेशी भारत में आता है तो उसे उस देश का नागरिक माना जाएगा, जिसके पासपोर्ट और अन्य यात्रा दस्तावेज़ों पर वह भारत आया है।

इस अधिनियम में एक महत्त्वपूर्ण प्रावधान भारत में आने वाले विदेशी वाहन यथा वायुयान, जलयान अथवा अन्य प्रकार के वाहनों के बारे में है। यह प्रावधान कहता है कि भारत में जब कोई वायुयान, जलयान अथवा अन्य कोई वाहन भारत में किसी पतन अथवा किसी स्थान से प्रवेश करता है तो उसे विहित सिविल अधिकारी या आप्रवास अधिकारी को उसमें लाए गए यात्रियों और चालकों के बारे में सूचना देना अनिवार्य होगा। यह सूचना आगमन और प्रस्थान करने वाले यात्रियों के बारे में दी जाएगी। इस संबंध विहित शर्तो के उल्लंघन पर अथवा गलत सूचना देने पर उन पर शास्ति अधिरोपित की जा सकती है। इस संबंध में शास्ति अधिरोपित होने पर उसके विरुद्ध 30 दिन के भीतर अपील की जा सकती है। इस संबंध में संबद्ध अधिकारी संबद्ध पक्ष की सुनवाई करने के बाद ही उस पर अपना फ़ैसला दे सकेगा।

इस अधिनियम के भाग पाँच के प्रावधानों के उल्लंघन करने पर दिए जाने वाले दंड के बारे में बताया गया है। धारा 18 में वायुयान, जलयान अथवा अन्य किसी प्रकार के वाहनों द्वारा किसी शर्त के उल्लंघन करने पर पाँच लाख रुपए तक का जुर्माना लगाया जा सकेगा। यदि कोई वाहन शर्तों का उल्लंघन कर किसी व्यक्ति को भारत लाता है ऐसी स्थिति में उन पर दो लाख रुपए से लेकर 5 लाख रुपया तक का जुर्माना लगाया जाएगा। इस संबंध में लगाए गए जुर्माने के फ़ैसले के विरुद्ध 30 दिन की अवधि के भीतर अपील की जा सकेगी। अपील अधिकारी पक्षकारों को सुनने के बाद ही अपना फ़ैसला देगा।

यदि लगाए गए जुर्माने का भुगतान नहीं किया जाता तो उस स्थिति में वायुयान, जलयान या किसी अन्य ढंग के वाहन को अधिगृहीत, निरुद्ध या विक्रय किया जा सकेगा।

इस अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन करने पर तथा उल्लंघन करने का प्रयास करने पर उसे दंडित किया जा सकेगा। यदि कोई व्यक्ति भारत में किसी विधिमान्य पासपोर्ट अथवा अन्य

विधिमान्य यात्रा दस्तावेज़ न होने पर भारत में प्रवेश करता है तो ऐसे व्यक्ति को 5 वर्ष का कारावास और 5 लाख रुपए तक के जुर्माने से दंडित किया जा सकेगा।

धारा 21 में भी दंड की व्यवस्था की गई है। अगर कोई विदेशी किसी भी विधिमान्य पासपोर्ट अथवा अन्य यात्रा दस्तावेज़ और वीज़ा के भारत में प्रवेश करता है या निवास करता है अथवा भारत से प्रस्थान करता है तो इस अधिनियम के संबंद्ध प्रावधानों के उल्लंघन के लिए उसे पाँच वर्ष तक का कारावास का दंड दिया जा सकेगा अथवा उसके विरुद्ध पाँच लाख रुपए तक का जुर्माना लगाया जा सकेगा अथवा कारावास और जुर्माना दोनों से उसे दंडित किया जा सकेगा।

यदि कोई जानबूझकर कूटरचित या कपटपूर्ण ढंग से पासपोर्ट या अन्य यात्रा दस्तावेज़ या वीज़ा प्राप्त कर भारत में प्रवेश, निवास या भारत से प्रस्थान करता है तो उसे 2 वर्ष से लेकर 7 वर्ष तक का कारावास का दंड दिया जा सकेगा तथा उस पर एक लाख से लेकर 10 लाख तक का जुर्माना किया जा सकेगा।

यदि कोई विदेशी निर्धारित अवधि से अधिक समय तक भारत में निवास करता है या अन्य शर्तो का उल्लंघन करता है तो उसे तीन वर्ष तक का कारावास का दंड दिया जाएगा और उस पर तीन लाख रुपए तक का जुर्माना किया जाएगा। यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को कोई उपरोक्त अपराधों के लिए दुष्प्रेरित करता है तो उसे भी इसी प्रकार का दंड दिया जाएगा जो उक्त अपराधों में लिप्त व्यक्ति को दिया जा सकता है। ऐसे अपराधों के लिए अपराधी को गिरफ़्तार भी किया जा सकता है। कुल मिलाकर यह प्रावधान इस अधिनियम में कारावास का दंड देने और जुर्माना लगाने का प्रावधान करता है।

इस प्रकार, इस क़ानून के मुख्य प्रावधानों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी विदेशी बिना विधिमान्य पासपोर्ट, विधिमान्य यात्रा दस्तावेज़ और विधिमान्य वीज़ा के भारत में न तो प्रवेश कर सकेगा न ठहर सकेगा और न ही भारत से प्रस्थान कर सकेगा। भारत देश में आप्रवास और विदेशियों विषयक क़ानून तो सख़्त होना ही चाहिए किंतु भारत की समस्या यह है कि यहाँ अवैध रूप से आने वाले विदेशियों पर नियंत्रण करना अब तक तो कठिन रहा है यथा बांग्ला देश से भारत की सीमाएँ इतनी अधिक लंबी-चौड़ी है कि शायद हर स्थान पर निगरानी नहीं हो पाती और वह कुछ सीमाओं से अवैध रूप से घुसपैठ कर लेते हैं और ऐसे अवैध प्रवासियों को भारत में प्रवेश करने पर उनके हैंडलर यहाँ उनके लिए वैध राशन कार्ड, आधार कार्ड आदि बनवा देते हैं और यहाँ के विशाल जन-समुदाय के सागर में वह समा जाते हैं और यहाँ आराम से रहने लगते हैं। ऐसे व्यक्ति न केवल यहाँ के संसाधनों का धड़ल्ले से इस्तेमाल करते हैं बल्कि यहाँ की क़ानून व्यवस्था भी बिगाड़ कर रख देते हैं और समय के साथ उनका मतदान देने का कार्ड भी बन जाता है।

कुछ वर्ष पहले म्यांमार में अशांति फैलने के चक्कर में वहाँ से अनेक रोहिंग्या मुसलमान को देश छोड़ना पड़ा था। उनमें से अधिकांश रोहिंग्या मुसलमान बांग्लादेश में आकर बस गए हैं और उनमें से अनेक शरणार्थी भारत में भी घुस गए हैं। अब स्थिति यह है कि वह जम्मू कश्मीर

से लेकर देश के सभी हिस्सों में फैल गए हैं और यहाँ के उनके हमदर्दों ने या राजनीतिक स्वार्थ के चलते उन्हें यही बसने में सहायता की है और उनके लिए आवश्यक दस्तावेज़ मुहैया करवा दिए गए हैं। जब कभी किसी अभियान के तहत देश में चैकिंग की जाती है तो कुछ बांग्लादेशी और रोहिंग्या मुसलमान पकड़ में आ जाते हैं।

हाल में यहाँ अवैध रूप से रह रहे रोहिंग्या शरणार्थियों को पकड़कर उन्हें देश से बाहर भेज दिया गया था किंतु यहाँ बैठे उनके ख़ेरख़्वाह देश के उच्चतम न्यायालय में एक याचिका के माध्यम से पहुँच गए। उन्होंने उच्चतम न्यायालय में गुहार लगाई और बताया कि भारत में रोहिंग्या मुसलमानों को देश से बाहर कर उन्हें समुद्र में फेंक दिया था। इस मामले की सुनवाई करते हुए माननीय न्यायाधीश ने कहा था कि पहले तो यह साबित नहीं किया गया कि उन्हें समुद्र में फेंक दिया गया। दूसरा उन्होंने यह कहा कि भारत कोई धर्मशाला नहीं कि वह इस प्रकार के लोगों को अपने देश में बसने की अनुमति दी जाए। वैसे भी यह रोहिंग्या शरणार्थी अथवा बांग्लादेशी भारत में ही क्यों आते है। विश्व में साठ-सत्तर मुस्लिम देश हैं और उन में से कुछ काफी अमीर हैं विशेष रूप से कई अरब देश बहुत अमीर हैं, वहाँ क्यों नहीं जाते। शायद भारत के लचर क़ानून उन्हें ऐसा करने में सहायक सिद्ध होते हैं। प्रश्न यही है कि नया बना आप्रवास और विदेशियों विषयक अधिनियम, 2025 ऐसे लोगों पर अंकुश लगाने में कितना प्रभावी सिद्ध होगा?

❑

पृष्ठ 132 का शेष

7. भारत के संविधान के मौलिक अधिकारों पर एक संक्षिप्त नोट, Unacademy (unacademy.com/content/nda/study-material/general-knowledge/fundamental-rights-of-the-indian-constitution)
8. संवैधानिक अधिकार और मौलिक अधिकारों के बीच मुख्य अंतर, द लीगल स्कूल, (thelegalschool.in/blog/difference-between-constitutional-rights-and-fundamental-rights)
9. भारत के संविधान का भाग III, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, (mea.gov.in/Images/pdf/PART_III.pdf)
10. संविधान सभा की बहसें, (eparlib.nic.in/bitstream/123456789/777855/1/CADebates_30-08-1947_Part_I.pdf, indiankanoon.org/search/?form_only=1&txt=Constituent+Assembly+Debates+on+1+December%2C+1948+Part+II, sansad.in/संसद सदस्यों के लिए डिजिटल अभिलेखागार)
11. संविधान का हृदय और आत्मा, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर (संविधान सभा की बहसें)
12. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, AIR 1973 SC 1461
13. जस्टिस के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ, (2017) 10 SCC 1

डॉ. अमर सिंह वधान

विश्व शांति और आतंकवाद के संदर्भ में साहित्यकार का दायित्व

यह कहना बहुत सही है कि साहित्य जीवन की प्रतिकृति और समष्टिगत चेतना की उपज होने के कारण सभी धर्मों, मनुष्यों, भाषाओं, पशु-पक्षियों, प्रकृति और यहाँ तक कि जड़ वस्तुओं से भी प्रेम करना सिखाता है। अमरीकी कवि वाल्ट विट्मैन 'लीब्ज़ ऑफ ग्रास' में कहते हैं, "ईश्वर स्वयं कई भाषाओं एवं धर्मों में आत्माभिव्यक्ति करता है। समाज को विभिन्न क्षेत्रों और परिस्थितियों में साहित्यकार के चेतन मन पर पड़े संस्कार अवचेतन मन में संगृहीत होते रहते हैं और उपयुक्त समय पाकर अभिव्यक्ति पाते हैं। साहित्यकार में अनेकता में एकता स्थापित करने की ज़बर्दस्त ताक़त होती है। समय साक्षी है कि व्यास, बाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, कबीर, होमर, दाँते, वर्ज़िल और शेक्सपीयर ने करोड़ों हृदयों को जोड़ा। एक अन्य सच्चाई यह भी है कि साहित्य विश्व को सुन्दर एवं शांतिमय बनाने का सदैव पक्षधर रहा है। युद्ध, आतंकवाद, हिंसा, शोषण, अन्याय एवं ग़रीबी के विरुद्ध साहित्य ने डटकर मोर्चा लिया है। मूल्यवत्ता की दृष्टि से देखें तो साहित्य में ईसा मसीह की मानवीयता है तो कृष्ण का सौन्दर्य-बोध भी है; राम की मर्यादा है तो बुद्ध की करुणा भी है; टैगोर का भक्तिभाव है तो निराला की संघर्ष चेतना भी है। कहने का प्रयोजन यह है कि साहित्य ने सदैव विश्व सभ्यता, विश्व संस्कृति, विश्व शांति और विश्व एकता के द्वार ही खोले हैं।

मनोवैज्ञानिक कोण से देखें तो मनुष्य की चिरप्रतीक्षित आकांक्षा 'शांति' ही है, जो न केवल उसके अस्तित्व, विकास एवं प्रगति के लिए आवश्यक है, बल्कि परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के अमनपूर्ण उन्नयन के लिए लाज़मी भी है। जिस तरह युद्ध, आतंकवाद, दंगे-फसाद आदि मानव मस्तिष्क की उपज हैं, शांति भी उसी मानव मस्तिष्क से ही जन्म लेगी। यह छनकर आया सत्य है कि हिंसा के प्रति प्रतिबद्धता आणविक सर्वनाश, घनी मार-काट, मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का भारी अपव्यय, विषमतावादी, अर्थव्यवस्था, मानव अधिकारों का उल्लंघन, हिंसक प्रतिशोध, हिंसा प्रधान विज्ञान और प्रौद्योगिकी, विप्लव, युद्ध आदि को तो जन्म दे सकती है, लेकिन विश्व शांति को कदापि नहीं। भारतीय इतिहास के एक सुदूर पन्ने से साक्ष्य मिलता है कि कलिंग युद्ध से होने वाली विपत्तियों को देखकर जो पश्चाताप अशोक को हुआ, उस पश्चाताप की भाषा अशोक को छोड़कर और किसी को नहीं आ सकती। हृदय परिवर्तन एवं बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने के बाद उनके एक धर्म लेख की भाषा कुछ इस तरह है, "पहले जहाँ युद्ध मेरी अर्थात् लड़ाई के नगाड़ों का शब्द होता था, वहाँ अब धर्म मेरी अर्थात् धार्मिक उत्सवों में बजने वाले नगाड़ों का

शब्द सुनाई पड़ता है। जहाँ पहले सेनाओं का जुलूस निकलता था, वहाँ अब धर्म संबंधी जुलूस निकलते हैं।" यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फाह्यान से अपने भारत वर्णन में इसी तरह के एक धार्मिक जुलूस का हाल लिखा है, जिसे उसने पाटलिपुत्र में देखा था। कहना न होगा कि अशोक के धर्म लेख, स्तभों, शिलाओं पर अंकित उपदेश शांति और अहिंसा के दुर्लभ साहित्यिक दस्तावेज़ हैं। दिलचस्प है कि जिस मस्तिष्क से हिंसा, युद्ध और अशांति जन्म लेती रहीं, उसी मस्तिष्क से मानव जाति की सुरक्षा एवं विश्व शांति को उत्पन्न होने में देर नहीं लगी।

इसमें कोई शक नहीं कि युद्ध एक अभिशाप है, बर्बरता है, बुराई है, पीड़ा है, व्यथा और विषाद है। इसकी क्रूरता और तुच्छता शांति की घोर शत्रु हैं। युद्ध न तो किसी समस्या का समाधान है और न ही सामाजिक संतुलन एवं राष्ट्रीय भावना को प्रबुद्ध करने का ज़रिया। ऐतिहासिक सूचना है कि रोहिणी नदी शाक्य राज्य और कोलियों के राज्य के दरमियान विभाजक रेखा का काम करती थी। एक बार रोहिणी जल को लेकर दोनों राज्यों के बीच झगड़े के कारण स्थिति युद्ध के कगार पर पहुँच गई। शाक्य सेनापति और 28 वर्ष के सिद्धार्थ के बीच मतभेद पैदा हो गया। सेनापति युद्ध के लिए तैयार था, लेकिन सिद्धार्थ युद्ध नहीं चाहते थे। अंत में सिद्धार्थ ने अपने तर्कों-दलीलों से युद्ध रोक दिया, भले ही उन्होंने परिब्राजक का जीवन व्यतीत करने का निर्णय ले लिया था। इस घटना ने सर एडविन आरनोल्ड (1982-1904) को इतना प्रभावित-प्रेरित किया कि उन्होंने बुद्ध को शांति और अहिंसा का परम पुजारी घोषित करते हुए 'लाइट ऑफ एशिया' (1874) शीर्षक से उनकी जीवन-कथा को काव्यबद्ध कर दिया। कहना न होगा कि साहित्यकार द्वंद्व और संघर्ष की स्थिति को समझने तथा इससे जूझने की शक्ति से लोगों का परिचय करवाता है, जिससे राष्ट्रीय भावना एवं अमन-चैन का सुदृढ़ धरातल बनता है। दिनकर की 'परशुराम की प्रतीक्षा' में अभिव्यक्त चुनौती विचार के धरातल पर जितनी सत्य है, उतनी ही कर्म के धरातल पर ख़री है।

प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) के बाद की दुनिया प्रतीकात्मक अर्थ में टी.एस. इलियट को 'बंजर भूमि' (द बेस्ट लैंड) लगती है। उनकी दृष्टि में यह 'बंज़रपन', दरअसल, पश्चिमी मानव की भावात्मक एवं आध्यात्मिक बाँझपन, शून्यता, निष्फलता और सभ्यता का ऊसरपन है। यहाँ कवि विश्वासों और अविश्वासों, संस्कृति और जीवन की स्थितियों को अतीत से जोड़कर देखता है। 'द बेस्ट लैंड' (1922) कविता का मूल स्वर इस ऊसर सभ्यता की मुक्ति है, सुरक्षा है और है इसका बचाव भी। कवि को सुनिश्चित नहीं तो संभव अवश्य लगता है कि भावात्मक, आध्यात्मिक एवं बौद्धिक तेजस्विता को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। विषय का प्रतिपादन प्रकृति, मिथक एवं धर्म से संबंद्ध प्रतिमानों, ऋतु-चक्र, भारत और यूनान के प्राचीन उर्वर मिथकीय संदर्भों, जिनमें देवता या धर्मपुत्र को पुनर्जीवित होने के लिए मरना ज़रूरी है, में से गुजरता है। आश्चर्य है कि 433 पक्तियों की इस लंबी कविता की अंतिम पंक्ति में कवि उपनिषद् की ओर मुड़ते हुए 'शांति शांति शाति' पुकार उठता है। कवि को मालूम है कि रक्तपात एवं विध्वंस अशांति, भय और

असुरक्षा पैदा करते हैं। भावात्मकता और आध्यात्मिकता के ज़रिए ही विश्व में शांति की हरीतिमा लाई जा सकती है।

परिवेश के बेरहमीपन में मनुष्य के 'होने' की अनिश्चितता और सिमसिमाते असंतोष में श्री अरविंद जैसे संवेदनशील साहित्यकार को भी झकझोरा था। उन्हें मूल्यों की पारंपरिक व्यवस्था के विनाश पर गहरा दुःख है। एक कवि एवं दार्शनिक के रूप में उनकी मान्यता है कि साहित्यकार समाज के साथ अपने संबंधों एवं अपेक्षित भूमिका से पलायन नहीं कर सकता है। वे साहित्य को जीवन का आईना तथा जीवन के सार तत्त्वों से आसवित मानते हैं। उन्होंने अपनी कल्पना और सर्जनात्मक विषय-निवेशों से युग बोध को वाणी दी है। उनकी कविताओं में जहाँ-जहाँ एक स्तब्ध, मोहभंग एवं उत्सुक मन के संदर्भ हैं, वहाँ-वहाँ शांति की पुकार भी ध्वनित है। ए.ई. हाउसमैन कविता को साहित्य का एक शक्तिशाली औज़ार मानते हैं। सामाजिक ज़्यादतियों, दबावों एवं हिंसात्मक गतिविधियों की तीव्र वेदना उनकी काव्य रचनाओं में उभर कर आई है। मनुष्य की चीख़, विषाद और 'न होने' का बोध पकड़ती हुई उनकी कविताएँ शांति की खोज में संलग्न होती हैं। अफ्रीकन कवयित्री सोनिया संचेज़ 'राइट ऑन : व्हाइट अमेरिका' कविता में विश्व शांति की पुकार करती हुई कहती हैं, "हमारे उज्ज्वल भविष्य को अंधकार में बदलने से पहले गोलाबारी और बंदूक़ों के भयावह संगीत को बंद करो। श्याम वर्ण होती हुई भी में अमेरिका की शुभचिंतक हूँ।" लेंगस्टन ड्यूग की रचनाएँ विश्व को मैत्री एवं समस्वरता की भूमि बनाने के पक्ष में हैं। इनमें अशांति एवं अत्याचार के विरुद्ध भावात्मक संघर्ष, शांति एवं आशावाद व्यंजित है।

चार खंडों तथा डेढ़ हज़ार पृष्ठों में समाया लियो तोल्स्तोय का 'युद्ध और शांति' उपन्यास 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध भू-वासों की मुक्ति के पहले के रूस का एक जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार ने इतिहास के प्रति अपने व्यापक दृष्टिकोण को स्पष्ट करना चाहा है कि युद्ध का सारे समाज जीवन के सभी पक्षों, सभी वर्गों और श्रेणियों में लोगों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उपन्यास में जहाँ वीरता, आत्म रक्षा, देश रक्षा के लिए न्यौछावर होने वाले वीरों का कीर्तिमान है, वहीं युद्ध के भयानक परिणामों, व्यक्तियों और समाज के जीवन की नींव हिला देने वाले टकरावों के विरुद्ध शांति का प्रबल आह्वान भी है। तोल्स्तोय ने युद्ध को सबसे घृणित, संहारक और पाश्विक प्रवृत्ति ठहराकर इसका विरोध किया था और मानव जाति की सुरक्षा एवं विकास के लिए शांति, प्रेम, करुणा और ममता को अनिवार्य माना। उल्लेखनीय है कि समरसैट मॉम ने इस उपन्यास के महत्त्व को बताते हुए लिखा है, "संसार का सबसे बड़ा उपन्यासकार बाल्ज़ाक था, किंतु 'युद्ध और शाति' संसार का सबसे महान उपन्यास है।" हैरत नहीं कि इस उपन्यास ने तोल्स्तोय की शक्ति को निचोड़ डाला था और इसी कारण लगभग एक साल तक वह खेतों और बाग में काम करके अपने मस्तिष्क को आराम देते रहे। प्रसंगवश, महाभारत युद्ध के संदर्भ में गीता को इस उपदेश 'तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत्तनिश्चय' को स्वीकार करना परम धर्म हो सकता है। लेकिन इस युद्ध में यह प्रश्न शत-प्रतिशत रूप से निर्णीत नहीं हो पाता कि कौन धर्मारूढ़ सत्पक्ष का समर्थक है और कौन अधर्माचरण करके युद्ध को निमंत्रण दे रहा

है। लेकिन शांति स्थापना के सभी प्रयास आतिशबाज़ी की मानिंद विखंडित हो जाते हैं।

यह तथ्य निराधार नहीं है कि विश्व साहित्य में शांति की अपील समान रूप से पाई जाती है, भले ही अभिव्यक्ति एवं अभिव्यंजना अलग-अलग रूपों में हुई हो। विलियम ब्लेक की कविताओं 'सॉन्ग्ज़ ऑफ इनोसेन्स' एवं 'सॉन्ग्ज़ ऑफ एक्सपीरियंस' में 'टाइगर' (बाघ) तथा ले. (मेमना) प्रतीकात्मक अर्थ में प्रमुक्त हुए हैं। बाघ आंतक, निर्दयीपन एवं हृदयहीनता का प्रतीक है और मेमना निर्दोषता, अबोधता एवं शांति का। कवि के अनुसार संसार रेत में एक अनाज का दाना है। हृदयहीन और सहृदयी के मध्य इस दाने को प्राप्त करने का संघर्ष चलता रहता है। लेकिन कवि समन्वय, सुमेल, मेल-मिलाप, शांति, करुणा, दया, सहानुभूति और प्रेम का संदेश देने में कहीं भी चूकता नहीं।

रवींद्रनाथ टैगोर भी परिवेश की ज्यामिति से दुःखी होकर 'गीतांजलि' में संगृहीत 'वंदना' शीर्षक गीत में ईश्वर से शांति की भीख़ माँगते हैं, "मैं तुझ से चरम शांति की भीख़ माँगने आया हूँ।'' रोमा रोलाँ स्वामी विवेकानंद और महात्मा गाँधी से बहुत प्रभावित थे। उनके सर्वोत्कृष्ट उपन्यास 'ज्याँ क्रिस्तोफ' में ओलिवर फान्स की आध्यात्मिक भावनाओं का प्रतीक है। इस उपन्यास का नायक एक संगीतज्ञ है जो अपने साथियों के साथ मिलकर शांति, मानव प्रेम तथा सद्भाव का प्रचार-प्रसार करता है। यहाँ याद कराना ज़रूरी है कि सन् 1909 ई. में गाँधी ने 'हिन्द स्वराज' में पाश्चात्य की कोख़ से जन्मी आधुनिक सभ्यता को 'एक रोग' तथा 'तीन दिन का तमाशा' बताया था, क्योंकि "यह सभ्यता न तो धर्म का विचार करती है और न आचार पर ही ध्यान देती है।" उनकी राय में सभ्यताओं के विकास के लिए भौतिक पवित्रता और आत्म-शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। गाँधी संसार के इतिहास में अहिंसा, शांति और मानव प्रेम के सबसे बड़े शिक्षक और प्रचारक हैं। उनका सर्वोदय तत्त्व दर्शन तो दार्शनिक और व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में संसार को भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ मौलिक देन है।

गोखले ने सन् 1909 ई. में सही कहा था, "गाँधी से अधिक वीर, शुद्ध आत्मा एवं शांतिप्रिय व्यक्ति इस संसार में कभी नहीं हुआ।

आज दहशत भरे ज़लज़लों एवं अस्तित्वादी क्रूर स्थितियों ने मनुष्य को 'होने' और 'न होने' के जाल में जकड़ रखा है। नैतिकता का ह्रास, इधर की त्वचा प्रदर्शन संस्कृति का अनुपूरक है। समाज में कमियाँ और विसंगतियों तो पहले भी थीं। लेकिन ईसा, बुद्ध, महावीर, गुरु नानक आदि विभूतियों ने सदियों पहले समाज को अधिक नैतिकताशील, शांतिप्रिय, न्यायप्रिय एवं समता प्रधान बनाने के शाश्वत प्रयास किए थे। इन्होंने जिन मानव मूल्यों की आवाज़ बुलंद की थी, वह विश्व की हर भाषा के भक्ति साहित्य का केंद्रीय विचार बनी। इस संदर्भ में जाफरे चौसर, विलियम ब्लेक, डब्ल्यू.बी. यीट्स, एमर्सन, थोरो, वाल्ट विट्मैन की कृतियों एवं भारतीय भाषाओं में रचित भक्ति साहित्य की रचनाओं को देखा जा सकता है।

विश्व साहित्य में साहित्यकारों का एक ऐसा भी वर्ग रहा है जिसने विश्व शांति की स्थापना, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विश्व बंधुत्व एवं मानव प्रेम को लिए हर मोर्चे पर जाना अपना लेखकीय

दायित्व समझा। अमरीकी उपन्यासकार अर्नेस्ट डेमिग्वे ने युद्ध की विनाश लीला का अनुभव लेने के बाद अपने उपन्यासों में शांति, संघर्ष एवं सद्‌भावना के स्वर उकेरे थे। रूपर्ट चुक, जूलियन ग्रेनफेल और सर ऑसबर्ट सिटवेल की कतिपय काव्य रचनाएँ मानवीय गरिमा एवं सार्वभौम सुचारू जीवन की अपील करती हैं। चार्ल्स हेमिल्टन सोर्ले, सिग्फाइड सेसून, विलफेड ओवेन, आइज़क रोज़नबर्ग और डेविड जोन्स की कविताओं का मूल स्वर शांति, सुख और मानव जाति के अस्तित्व का सुरक्षण ही है। उल्लेखनीय है कि चार्ल्स हेमिल्टन सोर्ले की युद्ध में मृत्यु के बाद फ्रांस से भेजी गई उसकी किट में से लिखा एक शोक-गीत मिला, जिसका भाव है "मृतक सिपाहियों की बंद आँखें तुम्हारे बहते आँसुओं को नहीं देख सकतीं और न ही उस प्रदत्त सम्मान को। मरना भी कितना आसान है।" सोर्ले ने सच्चे अर्थों में मानवीय संकट का गहरा अर्थ खोजा समझा था और निष्कर्षित किया था कि अपने सुख स्वतंत्र की तलाश में हमें दूसरों के सुख एवं स्वतंत्र जीवन पर भी ध्यान देना चाहिए, तभी सरहदों के आर-पार की शत्रुता को समाप्त किया जा सकता है। दुश्मनी युद्ध की जननी है, शांति वैश्विक भाईचारे की निर्मात्री है। फ्रांस के बहुचर्चित प्रतीकवादी कवि लॉरेन्ट टेलहेड के काव्य का प्रधान स्वर है -- 'शांति ही मानव का धर्म है।' वह विश्व के राष्ट्रों में अधिक सहानुभूतिपूर्ण सहकारी भावना पर बल देते हैं। उनका मानना है कि लोभ तथा ईर्ष्या द्वारा प्रभावित लोगों के लिए शांति से रहना असंभव है। समस्या का अस्थायी समाधान समस्या का स्थायी निराकरण नहीं है।

इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि 20वीं सदी सभ्यता की तीव्र प्रगति की सदी थी। यह युद्धों, नर-वध एवं हत्याकांडों की सदी भी रही। इस सदी में न तो विश्व शांति के लिए लोगों में तीव्र उत्कंठा जाग्रत हुई और न ही राष्ट्र संघ, संयुक्त राष्ट्र संघ, पंचशील एवं अन्य शांति सम्मेलन कोई सफल प्रयास कर सके। विज्ञान की स्थायी विश्व शांति को स्थापित करने में विफल रहा है। विज्ञान ने तो उन मानवीय मूल्यों की भी उपेक्षा की, जो इस धरती पर एक-दूसरे को पारिवारिक संबंध में जोड़ते हैं। अपने जीवन के अंतिम दिनों में अल्बर्ट आइंस्टीन को विज्ञान भी ग़लतियों का अहसास हो गया था और ये गाँधी के प्रशंसक बन गए थे और मानव जाति के कल्याण तथा शांति स्थापना संबंधी उनसे पत्र-व्यवहार भी करते रहे। लेकिन यह संयोग की बात है कि आज के वैज्ञानिकों ने अपनी सोच को विश्व शांति की ओर मोड़ा है। मिसाल के तौर पर जापान के वैज्ञानिक, पर्यावरणविद् एवं कवि काज़ुयोशी ईकदा ने अपने 20 काव्य-संग्रहों में विश्व बंधुत्व, विश्व शांति, मानवीय सुख एवं मानव-प्रेम की बार-बार बात कही है। उनकी 'पॉइम्स ऑन लव एंड पीस' संग्रह की कविताएँ वैश्विक भाईचारा, शांति एवं बौद्ध दर्शन की अभिव्यक्ति हैं। उनकी 'ए फिशिंग रोड' कविता संघर्षविहीन एवं शांतिमय विश्व को व्यक्त करती है। इनके काव्य का केंद्रीय स्वर मानवता है और इसकी वैश्विक अपील विश्व शांति, विश्व समन्वय एवं विश्व-बंधुत्व है।

यह चमकीला सत्य है कि गत तीन दशकों से विश्व स्तर पर सक्रिय आतंकवादी गतिविधियों ने सभी राजनीतिक, प्रशासनिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक समीकरणों को विफल

कर मनुष्य, समाज, देश एवं विश्व की सुरक्षा एवं शांति के सम्मुख कई कड़ी चुनौतियों खड़ी कर दी हैं। आतंकवाद वस्तुतः निम्न पूँजीवादी या मध्यवर्गीय क्रांतिकारी प्रवृत्ति है जो क्रान्तियों की पराजय की कोख़ से ही जन्म लेती है। प्रत्यक्ष उत्पादन से कटा हुआ यह वर्ग प्रकृति से ही अव्यवहारिक, जल्दबाज और उद्विग्नतापूर्ण होता है। आतंकवादी भटकाव को भली-भाँति समझना, उसके विरुद्ध विचारधारात्मक संघर्ष चलाना और नए सिरे से जनक्रान्ति की तैयारी करना आज के दौर का अनिवार्यतः कार्यभार है। इस दिशा में अपनी निर्भीक एवं सक्रिय भूमिका व दायित्व निर्वहन से साहित्यकार पलायन नहीं कर सकता है। तभी तो एक ज़िम्मेदार कवि के रूप में प्रसून जोशी 26 नवंबर, 2008 को मुंबई पर हुए आतंकवादी हमलों के विरुद्ध भारतीयों को सचेत करते हुए कह ही देते हैं -- ''कहीं तो शुरुआत करनी होगी, इस बार यही तप किया है। इस सच्चाई से किसी को मानसिक छीलन हो सकती है कि भारतीय साहित्य में ही नहीं, बल्कि विश्व साहित्य में भी आतंकवाद के विरुद्ध साहित्यकारों की क़लमें तक़रीबन मौन ही रही हैं। सस्ती एवं विवादास्पद लोकप्रियता की ख़ातिर धार्मिक वर्ज़नाओं पर प्रहार अवश्य किए गए हैं। यूँ तो युद्धों, क्रान्तियों और विद्रोहों के संदर्भ-प्रसंगों तथा परिणाम-प्रभावों को काव्य, उपन्यास आदि विधाओं में प्रचुर मात्रा में उकेरा गया है। लेकिन आतंकवाद को केंद्र में रखकर कोई कालजयी कृति अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। प्रसंगवश टोर ब्जोर्गो द्वारा संपादित 257 पृष्ठों की पुस्तक 'रूट कौज़ेज ऑफ टेररिज्म' (2005) में लेखकारों ने वैश्विक स्तर पर आतंकवाद के इतिहास-भूगोल का विश्वसनीय विवेचन-मूल्यांकन किया है। पुस्तक का निष्कर्ष है कि यदि किसी इलाक़े के लोग मच्छरों से पीड़ित हैं तो पहले उन गंदी नालियों को साफ करना चाहिए जहाँ वे पैदा होते हैं, बजाय इसके कि सभी मच्छरों को एक-एक करके मारने का प्रयास किया जाए।

प्रेम तथा करुणा विश्व शांति के नैतिक अंश एवं आधार स्तंभ है। चाहे किसी का धर्म में विश्वास हो या नहीं, परंतु कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो प्रेम तथा करुणा को अनादर की दृष्टि से देखे। फिर साहित्यकार की संवदेनशीलता में सभी मानव मूल्यों की आर्द्रता विद्यमान रहती है। वह तो सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक सहृदय, शांतिप्रिय एवं संवदेनशील प्राणी होता है। व्यक्ति और समाज के सुख-दुःख की सबसे गहरी और व्यापक प्रतिक्रिया उसी के अंदर होती है। इसलिए साहित्यकार का यह स्वाभाविक दायित्व एवं धर्म होता है कि वह अपने देश और काल की ठीक-ठीक परिस्थितियों का निर्भीकता से चित्रण करे। आज विश्व को अमानवीय एवं दहशतभरी गतिविधियों, हिंसा, अन्याय, दबावों तथा प्रभावों का शिकार होना पड़ रहा है। साहित्यकार यदि इन सब खौफ़नाक दृश्यों एवं घटनाओं की उपेक्षा करता है तो वह राष्ट्रीय और मानवतावादी जीवन से कोसों दूर है। वह राष्ट्र, जनता एवं साहित्य के प्रति विश्वासघात करता है। 'काव्यप्रकाश' में काव्य के लक्षण गिनाते समय काव्य प्रकाशकार ने 'शिवेतर-क्षतये' को भी प्रतिपादित किया है। अशिव की क्षति, साहित्य का बड़ा पुनीत अनुष्ठान है। अतः अशिव की क्षति करने तथा विश्व शांति को स्थापित करने में साहित्यकार को सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

❑

डॉ. प्रतिभा चौधरी

आतंकवाद एवं मानव अधिकार

प्रस्तावना :

सभ्यता मानव समाज में सदैव शांति, सहयोग, समन्वय, विकास आदि की आवश्यकता रही है। मानव के संपूर्ण विकास के लिए इन सभी बातों का होना आवश्यक है। लेकिन समय के साथ इनको प्रभावित करने वाले अनेक कारक चुनौती बनते रहे हैं। एक ऐसी चुनौती है 'आतंकवाद'। आज आतंकवाद की समस्या संपूर्ण विश्व के सामने गंभीर है जिससे विश्व का कोई भी राष्ट्र अछूता नहीं है।

आतंकवाद क्या है?

कोई ऐसा कार्य जो व्यक्ति विशेष या आम जनता के मन में भय उत्पन्न करने के आशय से किया जाता है वह आतंकवाद कहलाता है। इच्छापूर्वक मृत्यु कारित करना या आम जनता की स्वतंत्रता बाधित हो, सामान्य अर्थ में इच्छापूर्वक विनाश, सार्वजनिक संपत्ति का नुक़सान या ऐसा कोई कार्य करना जो आम नागरिकों के जीवन में संकट या ख़तरा उत्पन्न करें, हथियारों, गोला-बारूद एवं विस्फोटकों का निर्माण एवं वितरण के उद्देश्य से किया जाए आतंकवाद है। वर्तमान समय में अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद का सर्वाधिक सामान्य स्वरूप है विमान अपहरण, राजनीतिक मिशन पर आक्रमण, बँधक बनाना एवं भारत के कश्मीर में 26 लोगों का धर्म पूछ कर हत्या करना आतंकवाद का एक ज्वलंत उदाहरण है। आतंकवाद दो प्रकार का है -- अंतराज्यीय आतंकवाद एवं अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद।

अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद तब होता है जब एक से अधिक राज्यों का हित प्रभावित होता है किंतु अंतराज्यीय या आंतरिक आतंकवाद किसी राज्य की सीमाओं तक सीमित होता है।

आतंकवाद के उद्देश्य

1. अपने उद्देश्य व आदर्शों का सघन प्रचार करना और जनता का अधिक से अधिक समर्थन प्राप्त करना।
2. धमकी, हिंसा, हत्या, अपहरण और सार्वजनिक संपत्ति को अंधाधुंध नष्ट करना एवं शासन पर अपनी माँगों के लिए दबाव बनाना।

3. शासन या सेना के मनोबल को गिराने का प्रयत्न करना और उसे अपने कारनामों से अंजाम देना।
4. देश की सुरक्षा, शांति व अखंडता के लिए हर संभव ख़तरा उत्पन्न करना ताकि देश में भय, आतंक व असुरक्षा का वातावरण बना रहे।
5. देश में अलगाववादी शक्तियों को भड़का कर सरकार व जनता के लिए सिर दर्द बनाना।

आतंकवाद एवं मानव अधिकार

ऐसा प्रतीत होता है कि आतंकवाद और मानव अधिकारों के उल्लंघन के बीच एक अटूट संबंध है। आतंकवाद मानव अधिकारों की अवधारणा के लिए ख़तरा है और यह संयुक्त राष्ट्र के गठन को तथा व्यक्तियों के जीवन गरिमा को निर्मूल कर देता है। मानव अधिकार एवं आतंकवाद पर महासभा द्वारा अंगीकृत संकल्पना में कहा गया है कि आतंकवाद से भय का वातावरण का सृजन होता है। आतंकवाद के सभी कृत्यों, तरीकों को तथा आभासों को मानव अधिकारों, मूलभूत स्वतंत्रताओं तथा लोकतंत्र के विनाश को लक्षित करके किए गए कृत्यों की भर्त्सना की जानी चाहिए।

आतंकवादी कृत्य एवं तरीके एक ओर तो उस सरकार को ख़तरा महसूस कराते हैं, उनको मानव अधिकार एवं मूलभूत स्वतंत्रताओं के गंभीर उल्लंघन हेतु उत्तेजित करवाते हैं और दूसरी ओर वही सरकार सुसंगत अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार लिखितों के अनुसार व्यक्तियों के मूलभूत अधिकारों के संरक्षण एवं अनुरक्षण के संबंध में कठिनाई महसूस करती है।

आतंकवाद का पर्यावरण पर प्रभाव

आतंकवाद मानव जाति का सबसे बड़ा दुश्मन बनकर उभरा है। इससे मानव जाति को जितनी पीड़ा होती है वह वास्तव में हृदय विदारक है, पर्यावरण भी इससे अछूता नहीं है पर्यावरण को भी आतंकवाद के दुष्परिणाम मानव जाति की ही भाँति भोगने पड़ते हैं। चाहे स्वच्छ झरने, जंगल, हिमच्छादित पर्वत चोटियाँ सभी के नैसर्गिक स्वरूप में आतंकवाद ने विकृति पैदा की है। आतंकवादी अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए जितने भी साधन काम में लाते हैं उनका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव पर्यावरण सहन करता है।

नाभिकीय, जैविक और रासायनिक हथियारों का आतंकवादीयों द्वारा उपयोग पर्यावरण को प्रभावित करता है। आज का आतंकवादी पायलट, डॉक्टर और वैज्ञानिक हो सकता है। वह विनाश के अभिनव प्रयोग करता है। पहले उसने आत्मघाती दस्ते तैयार किए और अब विमानन आतंकवाद का उदाहरण अमेरिका पर हमलों को ले सकते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं की वे भविष्य में जैविक और रासायनिक हथियारों का भी प्रयोग कर सकते हैं। आतंकवादी को अपना उद्देश्य प्राप्त करने के लिए किसी भी हद तक गुजर जाना स्वीकार है। 'महाविनाश के हथियार' यदि मानवता चिह्न

दुश्मनों के हाथों लगे तो विनाश होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि आतंकवाद जिस गति से फैल रहा है उतनी ही गति से पर्यावरण को भी प्रभावित कर रहा है चाहे वह पहाड़ियों और जंगलों में फैला कचरा हो, प्लास्टिक हो या जल स्रोतों को रासायनिक हथियारों द्वारा फैलाई गई महामारियाँ यह सब सौरमंडल के सबसे जीवन और सुंदर ग्रह को नष्ट करने की साजिश है।

आतंकवादी अन्य व्यक्तियों के मानव अधिकारों का उल्लंघन करते हैं और इसीलिए उन्हें दंडित किया जाना चाहिए तथा उन्हें कोई मानव अधिकार नही मिलने चाहिए। वस्तुतः उन्हें गिरफ्तार कर किसी भी प्रकार की राजनीतिक सहानुभूति एवं राष्ट्रीयता पर बिना ध्यान दिए दंडित किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के अनुसार आतंकवादी अपने मानव अधिकार इस आधार पर खो देते हैं कि उन्होंने दूसरे व्यक्तियों के मानव अधिकारों का उल्लंघन किया है ऐसे आतंकवादी जो निर्दोष नागरिकों के मानव अधिकारों का उल्लंघन करते हैं वह सजा के लिए अवश्य उत्तरदायी है।

सुझाव

1. आतंकवाद से छुटकारा पाने के लिए वैश्विक स्तर पर प्रयास होने चाहिए।
2. आतंकवादियों को कठोर दंड दिया जाना चाहिए।
3. सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्यों के द्वारा आतंकवाद को समाप्त करने के लिए सकारात्मक क़दम उठाने चाहिए।
4. मेरे मत अनुसार उन्हें मानव अधिकार नहीं मिलने चाहिए क्योंकि वे अन्य व्यक्तियों के मानव अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः मानव अधिकार के प्रति जागृति बहुत हुई है लेकिन इसमें और भी आगे बढ़ने की आवश्यकता है। भारत में एक साथ 26 लोगों की हत्या आतंकवाद का वीभत्स्य एवं विस्तृत स्वरूप है। इस प्रकार की घटना भविष्य में विश्व के किसी भी देश में घटित न हो उसके लिए वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से विश्व के सभी देशों को मिलकर प्रयास करना चाहिए एवं आतंकवाद को समूल नष्ट करने की दिशा में कार्य करना चाहिए।

❑

संदर्भ

1. एच.बी. मिश्रा, आतंकवाद शांति के लिए ख़तरा और सद्भाव
2. डॉ. विवेक पंडित, मानव अधिकारों की संकल्पना
3. अरुण. पेडसे, अंतरराष्ट्रीय संबंध
4. MI Sondhi, terrorism and political violence, a source book
5. Ved Bhatnagar, Challenges to India's Terrorism, Casteism communalism

डॉ. तेजेन्द्र शर्मा

यू.के. उच्चतम न्यायालय के एक फ़ैसले में नारी की परिभाषा

हिंदी साहित्य में जब कभी नारी की बात होती है, तो जयशंकर प्रसाद की एक पंक्ति याद आ जाती है -- ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो...'' साथ ही साथ उनकी एक पंक्ति -- ''तुम दान कर चुकी पहले ही / जीवन के सोने-से सपने।''

जयशंकर प्रसाद की कविता के बाद भारत की नारी एक लंबी यात्रा पूरी कर चुकी है। भारत में नारियाँ प्रधान मंत्री, विदेश मंत्री, वित्त मंत्री, रक्षा मंत्री, सूचना एवं प्रसारण मंत्री जैसी ऊँची पदवियों पर विराजमान हो चुकी हैं। वे नर्स, डॉक्टर, वकील, पायलट, ऑटोरिक्शा चालक जैसे काम कर रही हैं। यहाँ तक कि भारतवंशी महिला अमरीका की उपराष्ट्रपति तक बन चुकी हैं। इसलिए आज की भारतीय नारी प्रसाद की 'श्रद्धा' से बहुत आगे बढ़ चुकी है।

विदेशों में नारी की प्रगति यात्रा के साथ-साथ लिंग-परिवर्तन के मामलों ने पुरुष और नारी के बीच के अंतर को धुंधला-सा कर दिया है। दरअसल ब्रिटेन में एक पुरुष ने (जिसका नाम एडम ग्राहम था), 2016 और 2019 में दो महिलाओं का बलात्कार किया। एडम उस समय विवाहित भी था।

एडम पर मुकद्दमा चला और 2023 में उसे 8 वर्ष की सजा सुनाई गई। मगर इस बीच एक ऐसी घटना घटित हो चुकी थी, जिसने सारा घटनाक्रम ही बदल दिया था। हुआ कुछ यूँ कि एडम ग्राहम ने इस बीच लिंग परिवर्तन कर लिया और अब उसने अपने आपको एक औरत घोषित कर दिया था। उसने अपना एक नया नाम भी रख लिया था -- इसला ब्रायसन!

इसलिए जब इसला ब्रायसन को 8 साल की सजा सुनाई गई, तो मसला यह उठ खड़ा हुआ कि उसे किस जेल में भेजा जाए -- मर्दों की या महिलाओं की? जेल अधिकारियों को जब बताया गया कि अब इसला ब्रायसन महिला है, तो उसे स्टर्लिंग इलाके की कॉरन्टन वेल महिलाओं की जेल में भेज दिया गया। मगर इस निर्णय पर विवाद खड़ा हो गया। क्योंकि इसला ब्रायसन जब पुरुष थी, तो उसने दो महिलाओं का रेप किया था। इसलिए उसे महिलाओं की जेल में भेजने से वहाँ की महिला कैदियों को ख़तरे में डालने जैसा हो जाता।

विवाद के केंद्र में एक ही मुद्दा था कि क्या किसी बलात्कारी को यह सुविधा दी जा सकती है कि वह स्वयं को महिला घोषित कर सके और उसकी बात मान भी ली जाए।

स्कॉटलैंड की संसद में निकोला स्टर्जन से यह सवाल भी पूछा गया कि क्या वे बलात्कारी इसला ब्रायसन को महिला मानती हैं? तब निकोला ने बताया कि इसला ब्रायसन को महिला

जेल से निकाल कर पुरुष जेल में भेजा जाएगा। इससे उन तमाम मामलों पर एक बार फिर निगाह डालनी पड़ी, जिसमें सजायाफ़्ता मुज़रिम ने अपने लिंग-परिवर्तन की घोषणा कर दी थी।

स्मरण रहे कि यदि कोई इंसान थर्ड जेंडर पैदा होता है, यानि कि बोलचाल की भाषा में हिजड़ा या किन्नर, तो उसे बचपन में ही थर्ड जेंडर घोषित कर दिया जाता है। वह अपना लिंग बदलवा कर किन्नर या हिजड़ा नहीं बनता है। ध्यान देने लायक बात यह भी है कि पश्चिमी समाज में समान-लिंग संबंधों को काफी हद तक स्वीकार कर लिया गया है। अब तो 'गे' या 'लेस्बियन' जोड़े सार्वजनिक रूप से साथ-साथ रहते हैं। मगर इसला ब्रायसन का मामला एकदम अलग है।

ब्रिटेन की उच्चतम न्यायालय में इस मामले को लेकर लंबा मुकद्दमा चला कि ट्रांसजेंडर महिला को महिला माना जाए या नहीं। दूसरी बात यह कि क्या किसी के कहने मात्र से मान लिया जाए कि वह महिला है या पुरुष? इस मुद्दे पर महिलाओं के अधिकार वाले पक्ष और ट्रांसजेंडर महिलाओं वाले पक्ष अपने-अपने हिसाब से दलीलें दे रहे थे। लगभग दो वर्षों तक केस चलता रहा और अंततः उच्चतम न्यायालय ने 16 अप्रैल, 2025 को अपना निर्णय सुना दिया।

फ़ैसला एकदम स्पष्ट शब्दों में था कि 'महिला' की क़ानूनी परिभाषा जन्म के समय उस इंसान के लिंग (सेक्स) पर आधारित होगी... यानी जन्म के समय जिसका सेक्स लड़की का होगा, वही महिला या स्त्री कहलाने की हक़दार होगी।

ब्रिटेन में 2004 में जेंडर रेकग्निशन एक्ट पास किया गया था, ताकि ट्रांस-समुदाय का जीवन क़ानूनी तौर पर बेहतर हो सके। इस एक्ट के बाद उन्हें सर्टिफिकेट दिया जाने लगा, जिससे उनके लिए अपनी पहचान साबित करना आसान हो गया था। इसके बाद 2010 में सेक्स के आधार पर अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए इक्वलिटी एक्ट लाया गया। इन दोनों ही क़ानूनों का ज़िक्र अदालत ने अपने फ़ैसले में किया है।

इसला ब्रायसन ने अपने अधिकारों की बहुत दुहाई दी, मगर उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में दृढ़ रुख़ अपनाया और जन्म के समय के लिंग निर्धारण को ही सबूत माना। पूरे ब्रिटेन में उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय पर बहुत बहसबाजी हुई।

स्कॉटिश सरकार और कैंपेन ग्रुप फॉर वुमेन स्कॉटलैंड (FWS) के बीच वर्षों से जो बहस या लड़ाई चल रही थी, उसे उच्चतम न्यायालय तक लाया गया था। इस कैंपेन ग्रुप ने सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों में अधिक महिलाओं को काम पर रखने के उद्देश्य से बने एक अस्पष्ट क़ानून पर स्कॉटिश अदालतों में दलीलें हारने के बाद उच्चतम न्यायालय में अपील शुरू की थी।

FWS की डायरेक्टर ट्रिना बज ने फ़ैसले का स्वागत करते हुए कहा कि अगर महिला की परिभाषा को जैविक आधार से न जोड़ा जाए, तो पब्लिक बोर्ड में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों पर भी पुरुष ही बैठे दिखाई देंगे। यह तो महिलाओं के साथ धोखा होगा। FWS को मशहूर लेखिका जे.के. रॉलिंग का भी समर्थन मिला है। जे.के. रॉलिंग विश्व-विख्यात उपन्यास 'हैरी पॉटर' की लेखिका हैं। उन्होंने पहले भी कहा था कि ट्रांस अधिकारों की आड़ में जैविक महिलाओं के हक को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। दूसरी तरफ एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसे मानवाधिकार

संगठनों ने उच्चतम न्यायालय के इस फ़ैसले की आलोचना की है। उन्होंने कहा है कि ट्रांस महिलाओं को महिलाओं के लिए आरक्षित जगहों से बाहर करना सही तरीका नहीं है।

उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय से पहले अस्पताल, पब्लिक टॉयलेट, स्कूल और जेलों में ट्रांस जेंडर महिलाएँ आम महिलाओं के साथ ही जाया करती थीं। मगर अब उन्हें जैविक महिलाओं वाली सुविधाएँ नहीं मिल पाएँगी। उच्चतम न्यायालय ने अपने फ़ैसले में यह भी कहा, कि अदालत इस फ़ैसले को किसी समूह की कीमत पर किसी दूसरे समूह की जीत के तौर पर नहीं देखती। फ़ैसले में इस बात पर भी ज़ोर दिया गया, कि ट्रांस समुदाय को क़ानून के दूसरे प्रावधानों के तहत सुरक्षा सुविधाएं पहले ही मिली हुई हैं।

इसला ब्रायसन की माँ श्रीमती जेनेट ब्रायसन ने उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाए गए नए क़ानून का स्वागत किया है। उन्होंने स्कॉटलैंड की पूर्व सत्तारूढ़ नेता निकोला स्टर्जन को फ़ोन करके कहा कि निकोला को अपनी पुरानी सोच के लिए क्षमा माँगनी चाहिए।

भारत में भी पिछले कुछ समय से पूर्व क्रिकेटर एवं कोच संजय बाँगर के पुत्र आर्यन के लड़की बनने की चर्चा सुर्ख़ियों में रही है। उसका नया नाम 'अनाया' है। अनाया ने कुछ सनसनीखेज बयान दिए हैं। अनाया ने कहा है कि कुछ क्रिकेटर उन्हें गंदी फ़ोटोज़ भेजते थे, साथ ही एक बड़े खिलाड़ी ने उनसे संबंध बनाने की बात भी कही। अनाया बांगर ने बताया कि जब उन्होंने अपना जेंडर चेंज कराया, तो उनके पिता ने कहा कि 'तुम्हें क्रिकेट छोड़ देना चाहिए', अब क्रिकेट में मेरी कोई जगह नहीं बची है। आर्यन ने बाकायदा ब्रिटेन के शहर मैनचेस्टर से अपनी सर्जरी करवाई थी। वह इसला ब्रायसन की तरह केवल बोलकर महिला नहीं बना।

दरअसल जैसे-जैसे समाज तरक्की कर रहा है, वैसे-वैसे जीवन जटिल होता जा रहा है। मेडिकल साइंस नए-नए शोध कर रहा है। पहले लगता था जैसे हम धार्मिक कपोल कथाएँ पढ़ रहे हैं कि पुरुष तो बन गया स्त्री और स्त्री बन गई पुरुष... अब यह सब घटित हो रहा है। पश्चिमी देशों का प्रभाव भारत और एशिया पर निरंतर पड़ रहा है। बहुत-सी बातें, जो हम भारत में नहीं सोच पाते थे, उसे अब सोच पा रहे हैं और उनकी ओर बढ़ भी रहे हैं। मगर यह सच है कि ब्रिटेन की उच्चतम न्यायालय ने एक बोल्ड फ़ैसला दिया है और स्त्री की परिभाषा को अंतिम रूप दे दिया है।

❑

डॉ. विनय कुमारी जैन

राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं का योगदान : संविधान सभा में महिलाओं की भूमिका के संदर्भ में

भारतीय संविधान दुनिया की सबसे समावेशी संविधानों में से एक है। ग्रीन विल ऑस्टिन के शब्दों में "भारतीय संविधान सबसे पहले और सबसे महत्त्वपूर्ण एक सामाजिक दस्तावेज़ है यह न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और धर्मनिरपेक्षता के मूल्य को दर्शाता है यह दुनिया के सबसे गतिशील और विकसित संविधान में से एक हैं।" जब संवैधानिक दस्तावेज़ों को देखते हैं तो हमें पता लगता है कि केवल पुरुष ही भारतीय संविधान के निर्माता नहीं है, एक राष्ट्र के रूप में संविधान सभा मैं 15 असाधारण महिला सदस्यों द्वारा भारतीय संविधान के निर्माण मैं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र इन्हीं 15 महिलाओं की संविधान सभा में भूमिका का अध्ययन करता है और महिला सशक्तिकरण की आवाज़ को बुलंद करता है। उन्होंने भारतीय संविधान को आकार देने के लिए कई लड़ाईयाँ लड़ी हैं। संविधान सभा में महिलाओं की भागीदारी ने महिलाओं को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में समान भागीदारी के रूप में मान्यता दी उनके योगदान ने लैंगिक समानता सामाजिक न्याय और सामाजिक सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय संविधान दुनिया का सबसे लंबा लिखित संविधान है।

प्रस्तावना : भारतीय संविधान को बनाने के लिए एक संविधान सभा गठित की गई थी संविधान सभा वह निकाय थी जिसे स्वतंत्र भारत का संविधान तैयार करने का कार्य सौंपा गया था। इसका गठन 9 दिसंबर, 1946 को कैबिनेट मिशन योजना के तहत किया गया। संविधान सभा में सरदार वल्लभभाई पटेल, राजेंद्र प्रसाद, डॉक्टर बी.आर. अंबेडकर जैसे प्रसिद्ध विद्वान शामिल थे। संविधान सभा में महिलाओं को शामिल करने से लोकतांत्रिक प्रक्रिया और राष्ट्र निर्माण में महिलाओं को समान भागीदारी के रूप में मान्यता मिलने का संकेत मिलता है। संविधान सभा में कुल 299 सदस्यों में 15 महिला सदस्य थीं। जिन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता से सभी सामाजिक बाधाओं को पार करते हुए दुनिया के सबसे प्रशंसित संविधानों में से एक को तैयार किया हम संविधान सभा की महिला सदस्यों के योगदान पर विचार करते हैं। जो अपने आप में असाधारण महिलाएँ थी, और अलग-अलग पृष्ठभूमि से आती थीं। उन्होंने संविधान के मसौदे में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया विशेष रूप से महिला अधिकारों सामाजिक कल्याण और समान नागरिक संहिता पर।

प्रयुक्त शब्द : लोकतांत्रिक प्रक्रिया, कैबिनेट मिशन, धर्म निरपेक्षता, बुद्धिमत्ता, समावेशी,

महिला सशक्तिकरण।

अम्मू स्वामीनाथन : जैसा कि उन्हें प्यार से बुलाया जाता था, विचारों और कार्यों में निडर थी। जो उनके सामाजिक कार्यकर्ता और राजनीतिक के रूप में उनके जीवन काल में स्पष्ट था। डब्ल्यू.ई.ए. में अपने काम के माध्यम से उन्होंने महिला श्रमिकों के आर्थिक मुद्दों और समस्याओं को संबोधित किया। संविधान सभा में वह व्यस्क मताधिकार की समर्थक थी और उन्होंने अस्पृश्यता को हटाने का समर्थन किया जो सामाजिक समानता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। जब संविधान सभा के प्रस्ताव पर चर्चा हो रही थी, अम्मू स्वामीनाथन ने कहा कि बाहर के लोग कहते रहे हैं कि भारत ने अपनी महिलाओं को समान अधिकार नहीं दिए अब हम कह सकते हैं कि जब भारत के लोगों ने ख़ुद अपना संविधान बनाया तो उन्होंने महिलाओं को देश की हर दूसरे नागरिक के बराबर अधिकार दिए। बाल विवाह से संबंधित स्वामीनाथ के व्यक्तिगत अनुभवों ने बाल विवाह निरोधक अधिनियम और सहमति की आयु अधिनियम के लिए उनकी वकालत को प्रेरित किया उन्होंने हिंदू कोड बिल का भी समर्थन किया जिसका उद्देश्य हिंदू धार्मिक क़ानून में सुधार करना और लैंगिक समानता को बढ़ावा देना था।

एनी मस्कारेने : एनी मस्कारेने स्वतंत्रता और रियासतों को भारतीय राष्ट्र में एकीकृत करने के लिए चलाए गए आंदोलन के नेताओं में से एक थी। जब राजनीतिक दल त्रवंकोर स्टेट कांग्रेस का गठन हुआ तो वह उसमें शामिल होने वाली पहली महिलाओं में से एक थी। उन्होंने संविधान सभा की चयन समिति में भी काम किया जिसने हिंदू कोडबिल पर विचार किया, संविधान सभा की बहसों में उन्होंने लोकतंत्र के सुचारू संचालन के लिए सत्ता के केंद्रीयकरण की बात कही थी। लेकिन उन्होंने पूर्ण केंद्रीकरण के खिलाफ़ भी चेतावनी दी थी, क्योंकि इससे लोकतांत्रिक संस्थाओं की प्रकृति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

दक्षायनी बेलायुधन : संविधान सभा के लिए चुने जाने वाली एकमात्र दलित महिला जिन्होंने विधान सभा की सदस्य के रूप में कार्य किया और 1946 से 1952 तक अंतिम संसद की हिस्सा रही। 34 वर्ष की उम्र में वह विधान सभा की सबसे कम उम्र की सदस्यों में से एक थीं। बेलायुधन का जीवन और राजनीति केरल में कठोर जाति व्यवस्था से प्रभावित और परिभाषित थी। संविधान सभा में बेलायुधन का कार्यकाल दो उद्देश्यों से परिभाषित था जो गांधी और अंबेडकर के साथ बिताए समय से प्रेरित और प्रभावित था। वह एक गांधीवादी थी, उन्होंने अस्पृश्यता का विरोध किया और संविधान के अनुच्छेद 17 का समर्थन किया जो अस्पृश्यता को समाप्त करता है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि केवल एक स्वतंत्र समाजवादी गणराज्य ही दलितों के उत्थान में मदद कर सकता है, तथा वह उन्हें अन्य नागरिको जैसी स्वतंत्रताएँ प्रदान कर सकता है।

बेगम ऐजाज़ रसूल : बेगम संविधान सभा में एकमात्र मुस्लिम महिला सदस्य थी। आज़ाद रसूल ने औपचारिक रूप से 1937 में पर्दा त्याग दिया जब उन्होंने ग़ैर-आरक्षित सीट से अपना पहला चुनाव जीता और उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्य बनीं। उन्होंने धर्म के आधार पर आरक्षण और पृथक निर्वाचिका का दृढ़तापूर्वक विरोध किया और तर्क दिया कि ऐसे उपाय अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों से सदैव के लिए अलग कर देंगे। उन्होंने मुस्लिम नेतृत्व के बीच

धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटों की माँग को स्वेच्छा से छोड़ने के लिए आम सहमति बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में महिला हॉकी को बढ़ावा देने में उनके प्रयासों को मान्यता देते हुए भारतीय महिला हॉकी कप का नाम उनके नाम पर रखा गया।

दुर्गाबाई देशमुख : सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान गांधी के नेतृत्व वाली नमक सत्याग्रह गतिविधियों में भाग लेने वाली एक प्रमुख समाज सुधारक, उन्होंने आंदोलन में महिला सत्याग्रहियों को संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके कारण ब्रिटिश राज अधिकारियों ने उन्हें 1930 और 1933 के बीच तीन बार कैद किया। दुर्गाबाई पहली महिला थी जिन्होंने चीन जापान की अपनी विदेशी यात्राओं के दौरान अध्ययन करने के बाद अलग-अलग पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। संविधान सभा में उन्होंने न्यायिक मामलों पर विचार किया था। मंत्री परिषद में स्थान पाने के लिए आयु सीमा 35 वर्ष से घटकर 30 वर्ष करने की वकालत की। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने योजना आयोग में सामाजिक सेवाओं की नेता के रूप में कार्य किया और केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड की अध्यक्ष बनी।

हंस जीव राज मेहता : हंस जीव राज मेहता संविधान सभा में कार्यरत थीं और मौलिक अधिकार उप समिति सलाहकार समिति और प्रांतीय संवैधानिक समिति की सदस्य थी। 15 अगस्त 1947 को आधी रात के कुछ मिनट बाद मेहता ने भारत की महिलाओं की ओर से सभा को राष्ट्रीय ध्वज भेंट किया जो स्वतंत्र भारत पर फहराया जाने वाला पहला ध्वज था। उन्होंने महिलाओं के लिए आरक्षण के विरुद्ध सशक्त तर्क दिए। उन्होंने कहा हमने सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनीतिक न्याय की माँग की है न कि कोटा और पृथक निर्वाचिका के लिए आरक्षित सीटों की। हंसा मेहता ने भारत के मौलिक अधिकारों का मसौदा तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जिससे लैंगिक न्याय संवैधानिक बहसों में शामिल हो सके। मेहता ने यूनेस्को की बोर्ड में भी कार्य किया और बड़ोदा एम.एस. विश्वविद्यालय की पहली कुलपति बनी।

कमला चौधरी : कमला चौधरी एक हिंदी कहानीकार थी उन्होंने 1930 की सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए संविधान सभा में देश भर से चुनी गई 15 महिलाओं में से एक कमला चौधरी जीवन भर साहित्य और राजनीति के माध्यम से महिलाओं के उत्थान के लिए सक्रिय रही। उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ उन्माद, पिकनिक, यात्रा और बेलपत्र के साथ-साथ कई लघु कथाएँ थी।

लीला राय : भारत में महिलाओं की शिक्षा के लिए काम करने वाली एक स्वतंत्रता सेनानी और सामाजिक कार्यकर्ता लीला राय बंगाल से विधान सभा में चुनी गई एकमात्र महिला सदस्य थी। उन्होंने भारत के विभाजन के खिलाफ़ विरोध प्रदर्शन करने के लिए अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया था। वह नेताजी सुभाष चंद्र बोस की करीबी सहयोगी थी।

मालती चौधरी : स्वतंत्रता के बाद मालती चौधरी ने भारत की संविधान सभा की सदस्य और उत्कल प्रदेश कांग्रेस कमेटी की अध्यक्ष के रूप में ग्रामीण पुनर्निर्माण में शिक्षा, विशेष रूप से व्यस्क शिक्षा की भूमिका पर ज़ोर देने की पूरी कोशिश की। वह आचार्य विनोबा भावे के भूदान आंदोलन में भी शामिल हुई और टैगोर और गांधी दोनों से प्रभावित हुई।

पूर्णिमा बनर्जी : पूर्णिमा बनर्जी उत्तर प्रदेश की उन महिलाओं के उग्रवादी नेटवर्क में से एक थी जो 1930-40 के दशक के अंत में स्वतंत्रता आंदोलन में सबसे आगे खड़ी थी। वह इलाहाबाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस समिति की सचिव थी। बनर्जी प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी शिक्षिका और कार्यकर्ता अरुणा आसफ़ अली की छोटी बहन थी। उन्होंने अपनी समाजवादी विचारधारा के प्रति वफादार रहकर संविधान के प्रारूपण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, उनका मानना था कि शिक्षा आजीविका का अधिकार है और सम्मानजनक रोटी कमाने का अधिकार संविधान के मौलिक अधिकारों का हिस्सा होना चाहिए, जो विधान सभा में उनके कई प्रारंभिक भाषणों का कारण था।

राजकुमारी अमृत कौर : राजकुमारी अमृत कौर संयुक्त प्रांत से संविधान सभा के लिए चुनी गई थी। उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान महिलाओं की व्यापक राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करना था। अमृत कौर आरक्षण में विश्वास नहीं करती थी। उनका मानना था कि सच्ची सामानता तभी प्राप्त होगी जब महिलाएँ आरक्षण की बजाय साधारण चुनावो के माध्यम से विधायिका में पहुँचेंगी। उन्होंने हंसा मेहता के साथ समान नागरिक संहिता की वकालत की और संविधान के मसौदे में धर्म के स्वतंत्रता अभ्यास को धार्मिक पूजा की स्वतंत्रता में बदलना चाहती थी। वह स्वास्थ मंत्री के रूप में भारत में कैबिनेट पद संभालने वाली पहली महिला बनी, और सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और उन्होंने देश में आधुनिक स्वास्थ्य सेवा की नींव रखी। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन केंद्र, दिल्ली में लेडी इरविन कॉलेज और अखिल भारतीय आयुर्वेद विज्ञान संस्थान (एम्स) कुछ प्रतिष्ठित संगठन है जो उनके अस्तित्व का श्रेय लेते हैं।

रेणुका रे : पश्चिम बंगाल से संविधान सभा के सदस्य के रूप में उन्होंने विधान सभा में महिला अधिकार के मुद्दों, अल्पसंख्यकों के अधिकारों और द्विसदनीय विधायिका प्रावधान सहित कई हस्तक्षेप किए। वह अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में भी शामिल हुई और महिलाओं के अधिकारों और पैतृक संपत्ति में उत्तराधिकार के अधिकारों के लिए ज़ोरदार अभियान चलाया।

सरोजिनी नायडू : भारत की कोकिला के नाम से मशहूर सरोजिनी नायडू एक भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की कार्यकर्ता और कवयित्री थी। नायडू की कविताओं में बच्चों की कविताएँ और देशभक्ति, रोमांस और त्रासदी जैसे गंभीर विषयों पर लिखी गई अन्य कविताएँ शामिल हैं। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनी और बाद में उन्हें संयुक्त प्रांत का राज्यपाल नियुक्त किया गया। राष्ट्रीय ध्वज पर तदर्थ समिति के सदस्य के रूप में उन्होंने संविधान सभा में भारत के लिए राष्ट्रीय ध्वज के महत्त्व और अर्थ के बारे में विस्तार से बात की थी। उन्होंने नागरिक स्वतंत्रता की एक मुखर समर्थक के रूप में भारत के लोकतांत्रिक लोकाचार पर एक स्थाई प्रभाव डालें।

सुचेता कृपलानी : सुचेता कृपलानी को 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में उनकी भूमिका के लिए याद किया जाता है। उन्होंने 1940 में कांग्रेस पार्टी की महिला शाखा की स्थापना की उन्होंने संविधान सभा के स्वतंत्रता सत्र में वंदेमातरम गाया, वह भारत की पहली महिला मुख्यमंत्री

भी थी। उन्होंने श्रम अधिकारों और शासन सुधारों की वकालत की।

विजय लक्ष्मी पंडित : विजय लक्ष्मी पंडित एक कार्यकर्ता, मंत्री, राजदूत और राजनीति के रूप में वह राष्ट्र निर्माण में महिलाओं की भूमिका में क्रांतिकारी बदलाव लाने वाले कुछ लोगों में से एक थी। ब्रिटिश काल में पहली महिला कैबिनेट मंत्री विजय लक्ष्मी पंडित संविधान बनाने के लिए भारतीय संविधान सभा की माँग करने वाले पहले नेताओं में से एक थी। सभा में उन्होंने अपने नागरिकों और अंतरराष्ट्रीय समुदाय के प्रति भारत के कर्त्तव्यों के महत्त्व को रेखांकित किया उल्लेखनीय रूप से वह संयुक्त राष्ट्र संगठन सम्मेलन में एकमात्र महिला प्रतिनिधि थी और उन्होंने 1953 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की पहली महिला और पहली एशियाई अध्यक्ष बनाकर इतिहास रच दिया।

निष्कर्ष : हम कह सकते हैं कि महिलाएँ पिछले कई दशकों से हर संभव चुनौती का सामना कर रही हैं। यह 15 महिलाएँ आज की महिलाओं के लिए एक रोल मॉडल हैं जिन्होंने देश की स्वतंत्रता आन्दोलन में भी बढ़-चढ़कर भागीदारी की और देश की स्वतंत्रता के बाद संबिधान निर्माण करने के लिए संविधान सभा में भी एक अमूल्य योगदान देकर अपने प्रभाव को छोड़ा यह महिलाएँ गतिशील नेता थी जो समाज के विभिन्न वर्गों के विचारों को प्रतिनिधित्व करती थी। वह सामाजिक मानदंडों और पितृसत्ता पार करके समाज के कमज़ोर पड़े वर्गों के आवाज़ बन गई। यह महिलाएँ बहुमुखी प्रतिभा की धनी, गतिशील और राष्ट्र निर्माण के प्रति अदम्य भावना रखती थी। उन्होंने संविधान सभा में सक्रिय रूप से भाग लिया। बहसों में योगदान देकर समाज के विभिन्न हिस्सों के विचारों को ज़ोरदार तरीक़े से प्रतिनिधित्व किया। उनके प्रयासों की स्वीकृति से सभी के लिए न्याय, स्वतंत्रता और समानता के संवैधानिक मूल्य की पूर्ति की दिशा में एक बेहतर कदम साबित हुआ जिसमें महिलाओं की भागीदारी प्रासंगिक थी। संविधान सभा में महिलाओं की भागीदारी ने लोकतांत्रिक प्रक्रिया और राष्ट्र निर्माण में महिलाओं की समान भागीदारी के रूप में मान्यता दी।

❑

संदर्भ

1. https://www.scconline.com/blog/post/2024/11/26/the-founding-mothers-of-the-indian- constitution-the-5-women-that-shaped-the-indian-republic/
2. संविधान सभा में महिला सदस्यों की भूमिका, दैनिक समसामयिक 27-11-2024 NEXT आई.ए.एस. करंट अफेयर्स
3. संस्कृति मंत्रालय : भारत सरकार
4. भारत का संविधान लिखने वाली महिलाएँ, द इंडियन एक्सप्रेस
5. न्यू इंडिया समाचार, नवंबर 16-30, 2021
6. पी.आई.बी., भारतीय संबिधान के निर्माण मैं महिलाएँ
7. https://cmsadmin.amritmahotsav.nic.in/blogdetail.htm?48

डॉ. सुधीर कुमार वत्स

वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना : सनातन परंपराओं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का टकराव

परिचय

भारत में विवाह एक पवित्र संस्था है, जो सदियों से सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने का एक अभिन्न अंग रही है। हालाँकि, आधुनिक समाज में व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता की बढ़ती जागरूकता ने पारंपरिक वैवाहिक अवधारणाओं के साथ एक जटिल द्वंद्व पैदा कर दिया है। इस द्वंद्व का एक प्रमुख उदाहरण वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना (Restitution of Conjugal Rights & RCR) का क़ानूनी प्रावधान है। यह प्रावधान, जो एक ओर विवाह की पवित्रता और सुलह को बढ़ावा देने का दावा करता है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता के मौलिक अधिकारों के साथ टकराव में प्रतीत होता है।

वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना एक क़ानूनी उपाय है जिसका उद्देश्य दंपत्ति द्वारा पहले प्राप्त वैवाहिक साहचर्य और दायित्वों को बहाल करना है। इसका तात्पर्य पति-पत्नी को एक साथ रहने और एक-दूसरे की संगति तथा समाज का आनंद लेने के अधिकार को पुनः स्थापित करना है। इस प्रावधान का प्राथमिक उद्देश्य सुलह को प्रोत्साहित करके विवाहों के टूटने को रोकना और विवाह की पवित्रता को बनाए रखना है। यह उन स्थितियों में लागू होता है जहाँ एक पति या पत्नी बिना किसी उचित कारण के दूसरे के समाज से अलग हो गए हों, और पीड़ित पक्ष न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है। इसे अक्सर 'विवाह बचाने वाला खंड' (marriage saving clause) भी कहा जाता है।

सनातन धर्म में विवाह को एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण, पवित्र, सामाजिक और आध्यात्मिक बंधन माना जाता है, जो दो आत्माओं को एक साथ बाँधता है। यह हिंदू धर्म के 16 संस्कारों में से 14वाँ संस्कार है, जिसे सप्तपदी और सात फेरों के बिना पूर्ण नहीं माना जाता। इसके विपरीत, आधुनिक भारतीय समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, निजता और स्वायत्तता के संवैधानिक अधिकारों का महत्त्व लगातार बढ़ रहा है, जैसा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित है।

यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि पुनःस्थापना (RCR) की अवधारणा सामंती अंग्रेजी क़ानून से उत्पन्न हुई थी, जहाँ पत्नी को पति की संपत्ति माना जाता था। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

के कारण, यह उपाय कभी भी हिंदू विवाह के दार्शनिक आधार से वास्तव में संरेखित नहीं हुआ, जिससे आधुनिक संदर्भ में इसका अनुप्रयोग स्वाभाविक रूप से समस्याग्रस्त हो जाता है जो व्यक्तिगत अधिकारों को महत्त्व देता है। यह भारतीय क़ानूनी परिदृश्य में इस उपाय की 'विदेशी' प्रकृति को रेखांकित करता है, इसके संहिताकरण के बावजूद यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ संघर्ष के लिए मंच तैयार करता है, क्योंकि महिलाओं के पितृसत्तात्मक, स्वामित्व वाले दृष्टिकोण से पैदा हुआ एक उपाय अब समानता और स्वायत्तता के लिए प्रयासरत समाज में लागू होता है।

क़ानून में यह बताया गया है कि वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना का उद्देश्य सुलह को प्रोत्साहित करना और विवाह के टूटने को रोकना है। हालाँकि, इसका व्यावहारिक प्रभाव अक्सर इसके बताए गए इरादे के विपरीत होता है। यह क़ानून एक व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध दूसरे व्यक्ति के साथ रहने के लिए मजबूर कर सकता है, जिससे उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन होता है। यह एक जबरदस्ती का कार्य हो सकता है। यह क़ानून के बताए गए उद्देश्य (सुलह) और इसके व्यावहारिक प्रभाव (जबरदस्ती) के बीच एक मूल तनाव को उजागर करता है। 'सुलह' की क़ानूनी कल्पना मौलिक अधिकारों के संभावित उल्लंघन को छिपाती है। यह दर्शाता है कि कैसे यह प्रतीत होता है कि परोपकारी क़ानूनी प्रावधान असमान शक्ति गतिशीलता और विकसित अधिकारों के संदर्भ में लागू होने पर दमनकारी बन सकता है। यह द्वंद्व वर्तमान में उच्चतम न्यायालय में लंबित **ओजस्वा पाठक बनाम भारत संघ** जैसे मामलों में बहस का एक केंद्रीय बिंदु है।

2. सनातन परंपराओं में विवाह : एक पवित्र बंधन

सनातन धर्म में विवाह को केवल एक सामाजिक या क़ानूनी अनुबंध नहीं, बल्कि एक पवित्र संस्कार माना जाता है। यह एक आजीवन और अविनाशी बंधन है जो दो आत्माओं को एक साथ बाँधता है, जिसमें विश्वास, सम्मान और साझेदारी की भावना होती है। पारंपरिक रूप से, तलाक़ की कोई अवधारणा नहीं थी, और विवाह को एक आजीवन बंधन माना जाता था जिसे तोड़ा नहीं जा सकता था। इसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक अनुष्ठानों का प्रदर्शन, संतानोत्पत्ति और पारिवारिक वंश को जारी रखना था।

पति-पत्नी के पारंपरिक कर्त्तव्य और अधिकार धर्मशास्त्रों और मनुस्मृति जैसे प्राचीन ग्रंथों में विस्तृत रूप से वर्णित हैं। सनातन धर्म में पति-पत्नी के रिश्ते में सम्मान, देखभाल, भोजन, वस्त्र, आश्रय, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रेम और स्नेह जैसे कर्त्तव्य और अधिकार शामिल हैं। मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में महिलाओं को बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्रों द्वारा संरक्षित बताया गया है। पति को 'पति परमेश्वर' (ईश्वर के समान) माना जाता था, और पत्नी का पहला कर्त्तव्य पति के अधिकार के प्रति आज्ञाकारी होना और उसके संरक्षण में रहना था। विवाह में व्यक्तिगत पसंद की तुलना में परिवार और समुदाय का निर्णय अधिक महत्त्वपूर्ण

होता था, और विवाह अक्सर व्यवस्थित होते थे, जिसमें परिवार के सदस्य सबसे उपयुक्त जीवनसाथी खोजने में भाग लेते थे। विधवा पुनर्विवाह भी आम तौर पर निषिद्ध था, जिससे विधवाओं की सामाजिक स्थिति अनिश्चित हो जाती थी।

मध्यकालीन इंग्लैंड में महिलाओं को संपत्ति माना जाता था, और यह विचार भारत में भी आया, जिससे महिलाओं की स्थिति और खराब हुई। दहेज प्रथा बढ़ी, और विवाह में महिलाओं के अधिकार गंभीर रूप से प्रतिबंधित थे। बाल विवाह और कम उम्र में यौन शोषण एक बड़ी समस्या थी, जिसके खिलाफ़ 19वीं और 20वीं शताब्दी में भारतीय नारीवादी कार्यकर्ताओं ने अभियान चलाए।

हिंदू विवाह की प्रकृति का एक विशुद्ध रूप से संस्कारिक, अविनाशी बंधन से एक संविदात्मक तत्वों (जैसे स्वतंत्र सहमति और तलाक़ का विकल्प) वाले बंधन में बदलना, व्यक्तिगत स्वायत्तता के दावे के लिए सीधे मार्ग प्रशस्त करता है। यदि विवाह सहमति से किया जा सकता है और भंग किया जा सकता है, तो सहवास बनाए रखने के लिए मजबूर होने का विचार (RCR के माध्यम से) इस विकसित समझ के लिए स्वाभाविक रूप से विरोधाभासी हो जाता है। हिंदू विवाह की अवधारणा के भीतर यह आंतरिक बदलाव व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ संघर्ष के लिए एक उपजाऊ जमीन बनाता है, क्योंकि पारंपरिक 'पवित्र कर्त्तव्य' आधुनिक 'चुनने के व्यक्तिगत अधिकार' से टकराता है।

3. वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना (RCR) : क़ानूनी परिप्रेक्ष्य

वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना (RCR) एक क़ानूनी उपाय है जिसका तात्पर्य दंपत्ति द्वारा पहले प्राप्त वैवाहिक साहचर्य और दायित्वों को बहाल करना है। भारत में, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (HMA) की धारा 9 इसको नियंत्रित करती है। यह प्रावधान करता है कि यदि पति या पत्नी बिना उचित कारण के दूसरे के समाज से अलग हो जाते हैं, तो पीड़ित पक्ष जिला न्यायालय में वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना के लिए याचिका दायर कर सकता है।

वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना का उपाय भारतीय वैवाहिक क़ानून के लिए 'नवीन' है और इसका मूल आधार इंग्लैंड में है, जहाँ पत्नी को पति की संपत्ति (चैटल) माना जाता था। यह ब्रिटिशों द्वारा भारत में लाया गया था, और 1866 में प्रिवी काउंसिल द्वारा पहली बार लागू किया गया। यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि धर्मशास्त्र या मुस्लिम क़ानून में मूल रूप से RCR के लिए कोई प्रावधान नहीं था।

वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना डिक्री प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित मानदंड पूरे होने चाहिए। एक वैध विवाह का अस्तित्व, एक पति/पत्नी का बिना उचित कारण के दूसरे के समाज से अलग होना, पीड़ित पक्ष द्वारा वापसी का औपचारिक अनुरोध, और याचिका को अनुमति न देने का कोई क़ानूनी आधार न होना। न्यायालय को याचिका में दिए गए बयानों

की सत्यता से संतुष्ट होना चाहिए। वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना का प्राथमिक उद्देश्य सुलह को प्रोत्साहित करके विवाह के टूटने को रोकना है। यदि वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना डिक्री का एक वर्ष के भीतर पालन नहीं किया जाता है, तो यह तलाक़ का आधार बन सकता है।

हिंदू विवाह अधिनियम के अलावा, भारतीय तलाक़ अधिनियम, 1869 (ईसाई विवाहों के लिए), पारसी विवाह और तलाक़ अधिनियम, 1936, और विशेष विवाह अधिनियम, 1954 में भी वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना एक वैवाहिक उपाय के रूप में शामिल है। मुस्लिम क़ानून में कोई सीधा प्रावधान नहीं होने के बावजूद, न्यायालय न्याय, इक्विटी और अच्छे विवेक के सिद्धांतों के माध्यम से वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना को लागू कर सकता है।

वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना के लिए एक प्रमुख आवश्यकता यह है कि अलगाव 'उचित बहाने के बिना' होना चाहिए, और उचित बहाने को साबित करने का बोझ अलग हुए पति/पत्नी पर होता है। हालाँकि, यह बात सामने आई है कि दुर्व्यवहार (विशेषकर भावनात्मक/मानसिक) या ज़बरन यौन संबंध, जो अक्सर घर की गोपनीयता में होते हैं, को साबित करना लगभग असंभव है। यह एक महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक चुनौती और एक क़ानूनी ख़ामी पैदा करता है। जबकि क़ानून सैद्धांतिक रूप से एक बचाव प्रदान करता है, घरेलू विवादों की प्रकृति (अक्सर छिपी हुई, ग़ैर-शारीरिक दुर्व्यवहार, वैवाहिक बलात्कार को अपराधीकरण न करना) अलग हुए पति/पत्नी (अक्सर महिला) के लिए सबूत के बोझ को पूरा करना बेहद मुश्किल बना देती है। यह 'उचित बहाना' खंड को एक सुरक्षा उपाय से जबरदस्ती के संभावित साधन में बदल देता है, जिससे व्यक्तियों को क़ानूनी सहारा के बिना प्रभावी ढंग से अपमानजनक स्थितियों में वापस धकेल दिया जाता है। यह सीधे लैंगिक प्रभाव और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के उल्लंघन से जुड़ा है।

वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना को 'विवाह बचाने वाले खंड' और सुलह को प्रोत्साहित करने वाले उपाय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। हालाँकि, क़ानून यह भी बताता है कि RCR डिक्री का एक वर्ष तक पालन न करना तलाक़ का आधार बन सकता है। यह भी उल्लेख किया गया है कि RCR याचिकाएँ अक्सर तब दायर की जाती हैं जब कोई पत्नी भरण-पोषण या क्रूरता की शिकायत दर्ज़ करती है, जिससे उसके दावे को विफल किया जा सके। यह RCR के एक दोहरे, अक्सर विरोधाभासी, कार्य को उजागर करता है। जबकि स्पष्ट रूप से सुलह के लिए, यह अक्सर एक रणनीतिक क़ानूनी युद्धाभ्यास के रूप में कार्य करता है, विशेष रूप से पतियों द्वारा या तो वापसी को मजबूर करने के लिए या ग़ैर-अनुपालन के आधार पर तलाक़ के लिए आधार तैयार करने के लिए, संभावित रूप से पत्नी के भरण-पोषण या क्रूरता के दावों को कमज़ोर करता है। यह RCR को केवल सुलह के एक उपकरण के रूप में नहीं, बल्कि वैवाहिक विवादों में एक हथियार के रूप में उजागर करता है, जिससे आघात बढ़ता है और क़ानूनी कार्यवाही जटिल होती है।

4. व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उदय : संवैधानिक अधिकार

आधुनिक भारत में, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता के सिद्धांत भारतीय संविधान में निहित मौलिक अधिकारों के माध्यम से मजबूत हुए हैं। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण का मौलिक अधिकार प्रदान करता है। यह एक व्यापक अवधारणा है जिसमें विभिन्न प्रकार के अधिकार शामिल हैं, और इसे अदालतों द्वारा अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। यह राज्य के कार्यों के खिलाफ़ एक मौलिक अधिकार है, जिसका अर्थ है कि कोई भी राज्य प्राधिकरण क़ानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा किसी नागरिक के इस अधिकार का उल्लंघन नहीं कर सकता।

निजता का अधिकार और शारीरिक स्वायत्तता का विस्तार न्यायिक निर्णयों के माध्यम से हुआ है। **न्यायमूर्ति के.एम. पुट्टुस्वामी बनाम भारत संघ (2017)** के ऐतिहासिक मामले में, उच्चतम न्यायालय ने निजता के अधिकार को मानव गरिमा का संवैधानिक मूल और अनुच्छेद 21 के तहत एक आंतरिक मौलिक अधिकार माना। निजता में व्यक्तिगत स्वायत्तता, व्यक्तिगत जानकारी पर नियंत्रण, गोपनीयता बनाए रखना और अनुचित हस्तक्षेप से मुक्त निर्णय लेने का अधिकार शामिल है। शारीरिक स्वायत्तता का अर्थ है अपने शरीर और व्यक्तिगत निर्णयों पर नियंत्रण का अधिकार, जिसमें यौन और प्रजनन संबंधी निर्णय भी शामिल हैं।

समानता का अधिकार, जो अनुच्छेद 14 और 15 में निहित है, लैंगिक समानता के सिद्धांत को रेखांकित करता है। अनुच्छेद 14 क़ानून के समक्ष समानता और क़ानून के समान संरक्षण की गारंटी देता है, जबकि अनुच्छेद 15(1) लिंग के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। RCR की संवैधानिकता को इन अनुच्छेदों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी गई है, यह तर्क देते हुए कि यह महिलाओं पर असंगत बोझ डालता है और लैंगिक रूप से भेदभावपूर्ण है।

संबंधों में चुनाव की स्वतंत्रता का भी अत्यधिक महत्त्व है। भारतीय संविधान व्यक्तियों को यह तय करने का अधिकार देता है कि वे किससे शादी करें, किससे न करें, और किसके साथ अपना वैवाहिक बंधन जारी रखना चाहते हैं। अनुच्छेद 21 के तहत 'जीवनसाथी चुनने का अधिकार' भी शामिल है। RCR इस चुनाव की स्वतंत्रता का उल्लंघन करता है, क्योंकि यह किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध सहवास के लिए मजबूर कर सकता है, जिससे संघ और निवास की स्वतंत्रता भी प्रभावित होती है।

अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) मौलिक अधिकारों के 'स्वर्ण त्रिभुज' (अनुच्छेद 14, 19, 21) का हिस्सा है, जो उनके सर्वोच्च महत्त्व को दर्शाता है। अनुच्छेद 21 का दायरा मेनका गांधी (व्यक्तिगत स्वतंत्रता की व्यापक अवधारणा) और पुट्टुस्वामी (निजता का अधिकार गरिमा और स्वतंत्रता के लिए आंतरिक) जैसे ऐतिहासिक निर्णयों द्वारा काफी व्यापक किया गया है। इस विस्तार में शारीरिक स्वायत्तता, संबंधों में पसंद की स्वतंत्रता और अनुचित हस्तक्षेप से मुक्ति शामिल है। मौलिक अधिकारों, विशेष रूप से अनुच्छेद 21, का यह निरंतर विस्तार एक तेज़ी से मजबूत संवैधानिक लेंस बनाता है जिसके माध्यम से RCR

को देखा जाता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता, निजता और गरिमा की व्याख्या जितनी अधिक व्यापक होगी, RCR उतना ही असंगत प्रतीत होगा। यह विकसित न्यायशास्त्र RCR को चुनौती देने के लिए क़ानूनी हथियार प्रदान करता है, क्योंकि राज्य का हस्तक्षेप का पारंपरिक औचित्य (विवाह को बनाए रखना) व्यक्ति की संवैधानिक रूप से संरक्षित स्वायत्तता के साथ तेज़ी से टकराता है। यह संस्थागत पवित्रता पर व्यक्तिगत अधिकारों को प्राथमिकता देने की दिशा में एक स्पष्ट प्रवृत्ति है।

जबकि कुछ अदालतों ने शुरू में घरेलू संबंधों में संवैधानिक क़ानूनों की शुरुआत को हतोत्साहित किया था, जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ (2018) मामले ने स्पष्ट रूप से कहा कि 'पारिवारिक संरचनाओं को निजी स्थान नहीं माना जा सकता जहाँ संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन होता है'। यह एक महत्त्वपूर्ण बदलाव है। यह सीधे उस पारंपरिक तर्क को संबोधित करता है कि विवाह एक निजी क्षेत्र है जो व्यक्तिगत अधिकारों के संबंध में राज्य के हस्तक्षेप से अछूता है। यह घोषणा करके कि संवैधानिक अधिकार पारिवारिक संरचनाओं के भीतर लागू होते हैं, उच्चतम न्यायालय ने RCR के लिए एक प्रमुख बचाव को ध्वस्त कर दिया है। इसका मतलब है कि सहवास को लागू करने का राज्य का प्रयास, भले ही विवाह को बनाए रखने के बहाने हो, अब मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के रूप में सीधे चुनौती दी जा सकती है, जिससे अधिक न्यायिक जाँच और RCR के संभावित सुधार का मार्ग प्रशस्त होता है। यह विवाह की 'पवित्रता' के तर्क पर एक महत्त्वपूर्ण प्रहार है जब यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन करता है।

5. द्वंद्व का विश्लेषण : वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना बनाम व्यक्तिगत स्वतंत्रता

वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना (RCR) और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच का द्वंद्व भारतीय क़ानूनी और सामाजिक परिदृश्य में एक गहरा और जटिल मुद्दा है। RCR किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध सहवास के लिए मजबूर करता है, जिससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता और गरिमा का उल्लंघन होता है। यह निजता के अधिकार में हस्तक्षेप करता है, विशेषकर व्यक्तिगत पसंद और सहवास के संबंध में, क्योंकि यह किसी व्यक्ति को अपनी निजी जिंदगी के बारे में निर्णय लेने से रोकता है। अनिवार्य सहवास शारीरिक स्वायत्तता का उल्लंघन कर सकता है, खासकर महिलाओं के लिए, क्योंकि यह उन्हें अपने शरीर और प्रजनन संबंधी निर्णयों पर नियंत्रण से वंचित करता है।

लैंगिक असमानता का मुद्दा RCR के विश्लेषण में केंद्रीय है। यद्यपि RCR प्रावधान लैंगिक रूप से तटस्थ प्रतीत होते हैं, लेकिन सामाजिक संदर्भ में यह महिलाओं के खिलाफ़ स्वाभाविक रूप से भेदभावपूर्ण है। महिलाओं को अनचाही गर्भावस्था, यौन शोषण और शारीरिक/मानसिक दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ सकता है यदि उन्हें ज़बरन वैवाहिक घर लौटना पड़े, विशेषकर यदि पति या ससुराल वाले क्रूर हों। भारत में वैवाहिक बलात्कार का ग़ैर-अपराधीकरण इस

समस्या को और बढ़ा देता है, जिससे RCR 'क़ानूनीकृत बलात्कार' का एक रूप बन सकता है, क्योंकि अदालतें ग़ैर-सहमति वाले यौन संबंध के मामले में कोई उपचार नहीं देतीं। RCR का उपयोग अक्सर पत्नियों द्वारा भरण-पोषण या क्रूरता की शिकायत दर्ज़ करने पर उनके दावों को विफल करने के लिए एक रणनीति के रूप में किया जाता है। न्यायमूर्ति चौधरी ने टी. सरिता मामले में कहा कि RCR पति और पत्नी को समान मानता है जो स्वाभाविक रूप से असमान हैं, और इसलिए क़ानून के समान संरक्षण के नियम का उल्लंघन करता है।

न्यायिक व्याख्याओं का विकास RCR की संवैधानिकता पर अदालतों के बदलते रुख को दर्शाता है। टी. सरिता बनाम टी. वेंकट सुब्बैया (1983) में, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 को असंवैधानिक घोषित किया, इसे 'बर्बर और असभ्य' उपाय बताया जो निजता और मानव गरिमा का उल्लंघन करता है। इसने व्यक्तिगत पसंद और शारीरिक स्वायत्तता पर ज़ोर दिया। इसके विपरीत, हरविंदर कौर बनाम हरमिंदर सिंह (1983) में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने RCR को संवैधानिक रूप से वैध माना, यह तर्क देते हुए कि धारा 9 केवल सहवास को बाध्य करती है, यौन संबंध को नहीं। बाद में, सरोज रानी बनाम सुदर्शन कुमार चड्ढा (1984) में, उच्चतम न्यायालय ने हरविंदर कौर के दृष्टिकोण को बरक़रार रखा और RCR की संवैधानिकता को बनाए रखा, यह कहते हुए कि यह वैवाहिक कलह को रोकने में मदद करके एक सामाजिक उद्देश्य पूरा करता है। न्यायालय ने इसे सुलह के लिए एक अवसर के रूप में देखा।

के.एस. पुट्टुस्वामी बनाम भारत संघ (2017) निर्णय के बाद निजता के अधिकार के विस्तार ने RCR की संवैधानिकता पर नए सिरे से बहस छेड़ दी है। **ओजस्वा पाठक बनाम भारत संघ** (2019 वर्तमान) मामला उच्चतम न्यायालय में लंबित है, जो धारा 9 की संवैधानिक वैधता को फिर से चुनौती दे रहा है, विशेष रूप से अनुच्छेद 14, 15 और 21 के उल्लंघन के आधार पर।

दिल्ली उच्च न्यायालय ने हरविंदर कौर में और बाद में उच्चतम न्यायालय ने सरोज रानी में RCR को इस तर्क के साथ बरक़रार रखा कि धारा 9 केवल सहवास को बाध्य करती है, यौन संबंध को नहीं, जिससे शारीरिक स्वायत्तता के उल्लंघन से इसे अलग किया जा सके। हालाँकि, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने टी. सरिता में RCR को स्पष्ट रूप से यौन सहवास और ग़ैर-सहमति वाले यौन संबंध के प्रवर्तन से जोड़ा। इसके अलावा, पुट्टुस्वामी निर्णय ने निजता को किसी व्यक्ति की पसंद के व्यक्ति के साथ सहवास के अधिकार को शामिल करने के लिए व्यापक किया। यह RCR की संवैधानिकता को सही ठहराने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली एक क़ानूनी कल्पना को उजागर करता है। यह तर्क कि RCR केवल 'सहवास' को बाध्य करता है, न कि 'यौन संबंधों' को, निजता और शारीरिक स्वायत्तता की विस्तारित समझ के आलोक में तेज़ी से अस्थिर होता जा रहा है। व्यावहारिक वास्तविकता यह है कि ज़बरन सहवास, विशेष रूप से एक क़ानूनी संदर्भ में जहाँ वैवाहिक बलात्कार को अपराधीकरण नहीं किया गया है, स्वाभाविक रूप से ज़बरन यौन संबंधों और अवांछित गर्भधारण का जोखिम वहन

करता है। यह एक पुरातन क़ानून को आधुनिक संवैधानिक सिद्धांतों के साथ समेटने के लिए न्यायपालिका के संघर्ष पर प्रकाश डालता है।

RCR के पक्ष और विपक्ष में तर्क मौजूद हैं। इसके पक्ष में विवाह की पवित्रता बनाए रखना, सुलह को बढ़ावा देना, विवाह के टूटने को रोकना, पति-पत्नी को एक और मौक़ा देना, और विवाह को एक संस्कार के रूप में संरक्षित करना जैसे तर्क दिए जाते हैं। कुछ का तर्क है कि यह एक सामाजिक उद्देश्य पूरा करता है। इसके विपक्ष में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, निजता और गरिमा का उल्लंघन, लैंगिक असमानता को बढ़ावा देना, महिलाओं पर असंगत बोझ, अनचाही गर्भावस्था और वैवाहिक बलात्कार का जोखिम, तलाक़ की कार्यवाही में देरी और आघात को लंबा करना जैसे तर्क दिए जाते हैं। इसे 'बर्बर', 'अशिष्ट' और 'अनैतिक' उपाय बताया गया है।

6. निष्कर्ष : संतुलन की तलाश में

वैवाहिक अधिकारों की पुनःस्थापना (RCR) का मुद्दा भारतीय समाज में सनातन परंपराओं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच चल रहे गहरे द्वंद्व का एक ज्वलंत उदाहरण है। विवाह की पवित्रता और पारिवारिक स्थिरता के पारंपरिक मूल्यों को व्यक्तिगत स्वायत्तता, गरिमा और पसंद की स्वतंत्रता के संवैधानिक अधिकारों के साथ संतुलित करना एक जटिल कार्य है। राज्य का हस्तक्षेप विवाह संस्था की रक्षा के लिए होता है, लेकिन इसे व्यक्तिगत अधिकारों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

आधुनिक विवाह आपसी सहमति, साझेदारी और व्यक्तिगत पसंद पर आधारित है, न कि जबरदस्ती या पितृसत्तात्मक अपेक्षाओं पर। क़ानूनों को इस बदलती सामाजिक गतिशीलता को प्रतिबिंबित करना चाहिए और महिलाओं के अधिकारों को प्राथमिकता देनी चाहिए। विवाह के सामाजिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी व्यक्तिगत अधिकारों को प्राथमिकता देना आवश्यक है।

ओजस्वा पाठक याचिका और अकादमिक चर्चा बताती है कि RCR को चुनौती 'वैवाहिक अधिकारों की अवधारणा और, विस्तार से, विवाह संस्था को लोकतांत्रित करने का अवसर' है। इसमें 'यौन संबंधों के अधिकार' को क़ानूनी रूप से लागू करने योग्य अपेक्षा के विचार से परे जाना शामिल है। यह एक दूरदर्शी दृष्टिकोण प्रस्तावित करता है। RCR की संवैधानिकता पर बहस करने के बजाय, वर्तमान क़ानूनी चुनौती वैवाहिक अधिकारों को जबरदस्ती यौन या सहवासात्मक कर्त्तव्यों से दूर, आपसी सम्मान, सहमति और व्यक्तिगत स्वायत्तता पर आधारित एक अधिक न्यायसंगत समझ की ओर मौलिक रूप से फिर से परिभाषित करने का अवसर प्रदान करती है। यह विवाह को पदानुक्रमित संस्था से, जिसमें लागू करने योग्य कर्त्तव्य होते हैं, एक लोकतांत्रिक साझेदारी में बदल देगा, इसे आधुनिक संवैधानिक नैतिकता और मानवाधिकार सिद्धांतों के साथ संरेखित करेगा।

वास्तविक लैंगिक न्याय प्राप्त करने के लिए क़ानूनी सुधारों की अंतर्संबंधता को समझना महत्त्वपूर्ण है। RCR के इर्द-गिर्द की चर्चा लगातार वैवाहिक बलात्कार के ग़ैर-अपराधीकरण, प्रजनन स्वायत्तता (पति की सहमति के बिना गर्भपात को क्रूरता के रूप में), और महिलाओं की आर्थिक भेद्यता (भरण-पोषण के दावे) जैसे मुद्दों से जुड़ी हुई है। यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि विवाह के भीतर वास्तविक लैंगिक न्याय प्राप्त करने के लिए RCR को अकेले संबोधित करना अपर्याप्त है। व्यापक सुधार के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें वैवाहिक बलात्कार को अपराधीकरण करना, प्रजनन अधिकारों की रक्षा करना और महिलाओं की वित्तीय सुरक्षा सुनिश्चित करना शामिल है। यह अंतर्संबंधता का अर्थ है कि परंपरा और स्वतंत्रता के बीच 'द्वंद्व' केवल RCR के बारे में नहीं है, बल्कि क़ानूनों और सामाजिक मानदंडों की एक व्यापक प्रणाली के बारे में है जो सामूहिक रूप से विवाह के भीतर महिलाओं के अधिकारों और स्वायत्तता को प्रभावित करती है। RCR का उन्मूलन या सुधार एक महत्त्वपूर्ण क़दम होगा, लेकिन अंतिम समाधान नहीं, जिसके लिए व्यापक क़ानूनी और सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता होगी।

7. संभावित नीतिगत सिफारिशें

संभावित नीतिगत सिफारिशें इस प्रकार हैं --

(1) **RCR का उन्मूलन या सीमित उपयोग :** RCR को पूरी तरह से समाप्त करना या इसे केवल एक सुलह उपकरण तक सीमित करना, जिसमें कोई बाध्यकारी प्रवर्तन न हो।

(2) **मध्यस्थता और परामर्श को मजबूत करना :** विवाह विवादों को हल करने के लिए मध्यस्थता और परामर्श कार्यक्रमों को मजबूत करना, जो आपसी सम्मान और सहमति पर आधारित हों।

(3) **वैवाहिक बलात्कार का अपराधीकरण :** वैवाहिक बलात्कार को अपराध बनाना ताकि महिलाओं को ज़बरन सहवास और यौन शोषण से बचाया जा सके, जिससे RCR के दुरुपयोग की संभावना कम हो।

(4) **लैंगिक संवेदनशीलता और आर्थिक सशक्तिकरण :** क़ानूनी और सामाजिक स्तर पर लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देना और महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण को सुनिश्चित करना, ताकि वे स्वतंत्र निर्णय ले सकें और भरण-पोषण के लिए RCR के दुरुपयोग का शिकार न हों।

(5) **एक समान नागरिक संहिता (UCC) की दिशा में क़दम :** एक समान नागरिक संहिता की दिशा में क़दम बढ़ाना, जो व्यक्तिगत क़ानूनों में विसंगतियों को दूर कर सके और सभी नागरिकों के लिए समान अधिकारों और कर्त्तव्यों को सुनिश्चित कर सके।

यह द्वंद्व भारतीय न्यायपालिका और विधायिका के लिए एक महत्त्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करता है, जिसमें उन्हें पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक संवैधानिक सिद्धांतों के बीच एक नाजुक

संतुलन स्थापित करना होगा ताकि एक ऐसे समाज का निर्माण हो सके जहाँ विवाह एक पवित्र बंधन बना रहे, लेकिन व्यक्तिगत स्वतंत्रता और गरिमा का भी सम्मान हो।

❑

संदर्भ

1. **संविधानिक प्रावधान**
   - भारत का संविधान, अनुच्छेद 14, 15, 19, 21
2. **अधिनियम**
   - हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (धारा 9)
   - भारतीय तलाक़ अधिनियम, 1869.
   - पारसी विवाह और तलाक़ अधिनियम, 1936.
   - विशेष विवाह अधिनियम, 1954.
3. **न्यायिक निर्णय (मामले)**
   - टी. सरिता बनाम टी. वेंकट सुब्बैया, AIR 1983 AP 356 (आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय)
   - हरविंदर कौर बनाम हरमिंदर सिंह, AIR 1984 Del 66 (दिल्ली उच्च न्यायालय).
   - सरोज रानी बनाम सुदर्शन कुमार चड्ढा, AIR 1984 SC 1562 (उच्चतम न्यायालय)
   - के.एस. पुट्टुस्वामी (सेवानिवृत्त) बनाम भारत संघ, (2018) 13 SCC 130 (उच्चतम न्यायालय)
   - जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ, (2018) 13 SCC 130, उच्चतम न्यायालय
   - ओजस्वा पाठक बनाम भारत संघ, (2019-वर्तमान) (उच्चतम न्यायालय में लंबित)
4. **प्राचीन ग्रंथ/धर्मशास्त्र**
   - मनुस्मृति (महिलाओं की स्थिति और कर्त्तव्यों के संदर्भ में उल्लिखित)
     अन्य अवधारणाएँ/स्रोत (जैसा कि पाठ में निहित है)
   - सामंती अंग्रेजी क़ानून (RCR की उत्पत्ति के संदर्भ में)
   - प्रिवी काउंसिल (1866 में भारत में RCR के पहले अनुप्रयोग के संदर्भ में)
   - विभिन्न शैक्षणिक चर्चाएँ और बहसें जो RCR की संवैधानिकता और उसके प्रभावों से संबंधित हैं (जैसे कि 'विवाह बचाने वाला खंड' या 'क़ानूनीकृत बलात्कार' की अवधारणाएँ)

सुभाष सेतिया

काम और नाम के लिए समय नहीं समर्पण चाहिए : संदर्भ उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश

मई 2025 में रिटायर हुए भारत के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस संजीव खन्ना इस बात के लिए याद किए जाएँगे कि अपनी प्रतिभा और योग्यता प्रमाणित करने के लिए बरसों-बरस काम करते रहना ज़रूरी नहीं। उन्होंने कुछ महीने ही देश के सर्वोच्च न्यायिक पद पर रह कर अपनी निष्पक्षता, कार्यकुशलता और ईमानदारी से न केवल न्याय व्यवस्था से जुड़े लोगों बल्कि आम लोगों को भी अभिभूत कर दिया। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि जस्टिस खन्ना ने छोटे से अपने कार्यकाल में अपने कुछ साहसिक और न्यायपूर्ण फ़ैसलों से न्यायपालिका के प्रति बढ़ रहे संशय और अविश्वास को पलट कर न्यायपालिका की विश्वसनीयता को पुनः स्थापित करने की दिशा में प्रयास किए। ऐसा नहीं है कि उनके सभी निर्णय न्याय की कसौटी पर एकदम खरे थे लेकिन कुल मिला कर उनके अंतरिम और अंतिम आदेशों ने देश की न्याय व्यवस्था को ऑक्सीजन देने का काम किया। उनकी विदाई सभा में न्यायपालिका से जुड़े लोगों की अपार भीड़, उत्साह तथा उनके संबंध में व्यक्त विचारों ने उनकी लोकप्रियता पर भी मोहर लगा दी।

जस्टिस खन्ना ने पदभार सँभालते ही उच्चतम न्यायालय के काम काज में पारदर्शिता लाने के बुनियादी सुधार से ही संकेत दे दिया कि वे लीक पर चलने वाले न्यायाधीश नहीं हैं। उन्होंने उच्चतम न्यायालय को सूचना के अधिकार के अंतर्गत लाने का ऐतिहासिक नीतिगत फ़ैसला किया। इसी तरह, विभिन्न मुकदमों की सुनवाई के लिए पीठ गठित करने की प्रणाली को पारदर्शी बनाया। उनके अल्प कार्यकाल में एक ऐसी घटना हुई जिससे न्यायपालिका की साख दाँव पर लग गई। दिल्ली उच्च न्यायालय के जस्टिस जसवंत वर्मा के घर से करेंसी मिलने की घटना ने न्यायपालिका के सामने बड़ी चुनौती पैदा कर दी। जस्टिस खन्ना ने इस संवेदनशील मसले को बड़ी कुशलता व संयम के साथ निपटाया।

हर मस्ज़िद के नीचे मंदिर खोजने की सांप्रदायिक प्रवृत्ति पर भी संविधान की धाराओं के अनुसार रोक लगाई। उनके कार्यकाल में संविधान की सर्वोच्चता फिर से स्थापित हुई। कुछ समय से संविधान की सर्वोच्चता पर प्रश्न चिह्न लगाने के प्रयास हो रहे थे। बुलडोजर राज ने न्याय व्यवस्था के सामने गंभीर चुनौती पेश की हुई थी। वकील और दलील के बिना ही

गरीबों, विशेषकर अल्पसंख्यकों के घरों व दुकानों को बुलडोजर चला कर धराशायी किया जा रहा था। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में क़ानून व संविधान को सर्वोच्च ठहराते हुए राजनीतिक और प्रशासनिक निरंकुशता पर अंकुश लगाया।

जस्टिस खन्ना अपनी सादगी के लिए याद किए जाएँगे। वे सार्वजनिक मंचों और पब्लिसिटी से दूर रह कर चुपचाप अपना काम करने में विश्वास रखते थे। अपना पद छोड़ते समय जस्टिस खन्ना ने एक और साहसिक घोषणा करके लोगों का दिल जीत लिया। उन्होंने कहा कि रिटायर होने के बाद वे कोई पद स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसे निस्पृह और संतुष्ट न्यायाधीश पर भारत क्यों गर्व न करे! वैसे भी वे उन न्यायमूर्ति हंसराज खन्ना के भतीजे हैं जिन्होंने अपने न्यायिक फ़ैसलों से समूचे विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनके पिताश्री न्यायमूर्ति देवराज खन्ना दिल्ली उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश थे जो वर्ष 1985 में सेवा-निवृत्त हुए। न्यायमूर्ति संजीव खन्ना के बारे में एक और बात उल्लेखनीय यह है कि उन्होंने अपनी संपत्ति की घोषणा कर दी थी जिसे उच्चतम न्यायालय के पोर्टल पर देखा जा सकता है।

❑

डॉ. संतोष पाटीदार

अंतरराष्ट्रीय आपदा प्रबंधन में शिक्षण संस्थानों की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

हाल के वर्षों में, प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि ने आपदा प्रबंधन को वैश्विक प्राथमिकता बना दिया है। इस संदर्भ में शैक्षणिक संस्थान न केवल जागरूकता बढ़ाने में, बल्कि व्यक्तियों को व्यावहारिक कौशल प्रदान करने, नवाचारपूर्ण अनुसंधान करने और प्रभावी आपदा नीतियों के विकास में योगदान देने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह विश्लेषणात्मक अध्ययन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आपदा तैयारी, प्रतिक्रिया, पुनर्प्राप्ति और जोख़िम न्यूनीकरण को मज़बूत करने में शैक्षणिक संस्थानों के महत्त्वपूर्ण योगदान की जाँच करता है। मौजूदा रूपरेखाओं, वैश्विक केस स्टडीज और प्रायोगिक प्रमाणों के विश्लेषण के माध्यम से, यह शोध दर्शाता है कि विश्वविद्यालय, स्कूल और प्रशिक्षण केंद्र किस प्रकार से सामुदायिक लचीलापन बढ़ाते हैं, आपदा शिक्षा को बढ़ावा देते हैं और आपात स्थितियों के दौरान शिक्षा की निरंतरता सुनिश्चित करते हैं। इसके अलावा, यह अध्ययन अकादमिक पाठ्यक्रमों और संस्थागत प्रथाओं में आपदा जोख़िम न्यूनीकरण (DRR) को एकीकृत करने के महत्त्व पर ज़ोर

देता है ताकि जागरूकता की संस्कृति का निर्माण किया जा सके और वैश्विक स्तर पर आपदा प्रभावों को कम किया जा सके। निष्कर्ष बताते हैं कि शैक्षणिक संस्थानों, सरकारों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के बीच सहयोगी नेटवर्क की आवश्यकता है ताकि व्यापक वैश्विक आपदा प्रबंधन रणनीतियों को आगे बढ़ाया जा सके।

कीवर्ड्स : आपदा प्रबंधन, शैक्षणिक संस्थान, आपदा जोख़िम न्यूनीकरण (DRR), अंतरराष्ट्रीय सहयोग, क्षमता निर्माण, सामुदायिक सहभागिता, लचीलापन, आपातकालीन तैयारी, नीति विकास, सतत विकास।

प्राकृतिक या मानव-निर्मित आपदाएँ, मानव जीवन, बुनियादी ढाँचे और वैश्विक सामाजिक-आर्थिक स्थिरता के लिए गंभीर ख़तरा बनी हुई हैं। पिछले दो दशकों में, आपदाओं ने 12 मिलियन से अधिक लोगों की जान ले ली है और आवश्यक क्षेत्रों में व्यापक विघटन का कारण बनी हैं, जिनमें शिक्षा प्रणाली सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्रों में शामिल है। शैक्षणिक ढाँचे को नुक़सान, लंबे समय तक स्कूल बंद रहना और सीखने की प्रक्रिया में बाधा केवल छात्रों और शिक्षकों को ही प्रभावित नहीं करती, बल्कि दीर्घकालिक सामुदायिक लचीलापन और विकास में भी बाधा डालती है।

शैक्षणिक संस्थान वैश्विक आपदा प्रबंधन प्रयासों में एक केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। अपनी मुख्य शिक्षा प्रदाता भूमिका से परे, ये संस्थान आपदा तैयारी, अनुसंधान, नीति विकास और सामुदायिक सहभागिता के लिए महत्त्वपूर्ण मंच के रूप में कार्य करते हैं। आपदा जोख़िम न्यूनीकरण (DRR) रणनीतियों को पाठ्यक्रम में शामिल करके, आपदा जोख़िमों पर उन्नत अनुसंधान करके, और विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करके, स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय व्यक्तियों और समुदायों को आपदाओं की भविष्यवाणी, प्रतिक्रिया और पुनर्प्राप्ति के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल से लैस करते हैं। इसके अतिरिक्त, यूनेस्को के व्यापक स्कूल सुरक्षा रूपरेखा (CSSF) और सेंदाई फ्रेमवर्क फॉर डिजास्टर रिस्क रिडक्शन (2015-2030) जैसे वैश्विक प्रतिबद्धताएँ शिक्षा की सुरक्षा और लचीलापन संस्कृति को बढ़ावा देने में आवश्यक भूमिका को रेखांकित करती हैं। यह अध्ययन अंतरराष्ट्रीय आपदा प्रबंधन में शैक्षिक संस्थानों के बहुआयामी योगदानों का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करने का उद्देश्य रखता है। इसके माध्यम से आपदा तैयारी, प्रतिक्रिया, पुनर्प्राप्ति, अनुसंधान और नीति समर्थन में उनके योगदानों का विश्लेषण किया जाएगा। यह पत्र सर्वश्रेष्ठ प्रथाओं, सफल मॉडल्स और निरंतर चुनौतियों को उजागर करने का प्रयास करेगा। वैश्विक केस स्टडीज और साक्ष्य-आधारित विश्लेषण के माध्यम से, यह शोध शैक्षिक संस्थानों की आपदा-प्रतिरोधी समुदायों के निर्माण और बढ़ते वैश्विक आपदा जोख़िमों के बीच शिक्षा की निरंतरता सुनिश्चित करने में परिवर्तनकारी क्षमता को रेखांकित करता है। एक अधिक जुड़ी हुई दुनिया में, प्राकृतिक और मानव-निर्मित आपदाएँ ऐसे वैश्विक चुनौतियाँ बन गई हैं जो सीमाओं को पार कर जाती हैं। इस प्रकार की घटनाओं का प्रभाव, चाहे वह भूकंप, बाढ़, महामारियाँ, या राजनीतिक अस्थिरता के रूप में हो, प्रभावी आपदा प्रबंधन

के लिए एक एकीकृत, सहयोगात्मक दृष्टिकोण की माँग करता है।

शैक्षिक संस्थान, समाज की प्रमुख संरचनाओं के रूप में, आपदा प्रबंधन रणनीतियों को आकार देने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, दोनों तैयारी और प्रतिक्रिया के संदर्भ में। वे ज्ञान सृजन, नीति समर्थन, और क्षमता निर्माण के केंद्र के रूप में कार्य करते हैं, जो समाजों को संकटों का पूर्वानुमान करने, प्रतिक्रिया देने और उनसे उबरने के तरीके को प्रभावित करते हैं। यह विश्लेषणात्मक अध्ययन अंतरराष्ट्रीय आपदा प्रबंधन में शैक्षिक संस्थानों की केंद्रीय भूमिका का अन्वेषण करता है। यह इस बात की जाँच करता है कि विश्वविद्यालय, स्कूल और अनुसंधान केंद्र आपदा जोखिम कमी, आपातकालीन तैयारी और लचीलापन निर्माण में कैसे योगदान करते हैं। एक अंतरविषयक दृष्टिकोण के माध्यम से, यह अध्ययन इस बात को उजागर करेगा कि शैक्षिक संस्थान आपदा प्रबंधन में किस प्रकार संलग्न होते हैं -- नवोन्मेषी तकनीकों के विकास और सार्वजनिक जागरूकता बढ़ाने से लेकर भविष्य के नेताओं को प्रशिक्षित करने और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देने तक। इन भूमिकाओं को समझकर, हम शैक्षिक संस्थानों को वैश्विक संदर्भ में आपदा प्रबंधन की जटिलताओं से निपटने के लिए बेहतर तरीके से सुसज्जित कर सकते हैं, जिससे आपदाओं द्वारा प्रस्तुत हो रही विकासशील चुनौतियों के प्रति अधिक प्रभावी प्रतिक्रियाएँ सुनिश्चित हो सकें। अंततः, यह अध्ययन यह दृष्टिकोण प्रदान करने का उद्देश्य रखता है कि शैक्षिक संस्थान अंतरराष्ट्रीय आपदा प्रबंधन में अपनी भूमिका को और कैसे बढ़ा सकते हैं, उनके वर्तमान प्रयासों की जाँच करते हुए और वैश्विक आपदा प्रतिरोध क्षमता में उनकी संलग्नता को मज़बूत करने के लिए संभावित मार्गों की पहचान करते हुए।

विश्वविद्यालय आपदाओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं, चाहे वह प्राकृतिक, तकनीकी, या मानव-निर्मित हों, क्योंकि उनके खुले परिसर, उच्च जनसंख्या घनत्व और महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्य होते हैं (वाटसन एट अल., 2011)। आपदाएँ विश्वविद्यालय संचालन में गंभीर व्यवधान उत्पन्न कर सकती हैं, बुनियादी ढाँचे को नुक़सान पहुँचा सकती हैं, शैक्षिक गतिविधियों में व्यवधान डाल सकती हैं, और परिसर समुदायों की सुरक्षा को ख़तरे में डाल सकती हैं। इन व्यवधानों के परिणामस्वरूप न केवल वित्तीय नुक़सान होते हैं, बल्कि शैक्षिक सामग्री, अनुसंधान डेटा, और संस्थागत स्थिरता का भी नुक़सान होता है। हाल की वैश्विक घटनाओं, जैसे COVID-19 महामारी ने उच्च शिक्षा प्रणालियों की संवेदनशीलता को और अधिक उजागर किया है। विश्वविद्यालयों की बंदी, ऑनलाइन शिक्षा की तेज़ी से स्विचिंग, और अंतरराष्ट्रीय छात्र राजस्व का नुक़सान संस्थागत तैयारी और लचीलापन में महत्त्वपूर्ण अंतराल को उजागर करता है (चक्रवर्ती एट अल., 2021, झांग एट अल., 2020)।

वैश्विक स्तर पर, विश्वविद्यालयों ने विभिन्न आपदाओं के सीधे और अप्रत्यक्ष प्रभावों का अनुभव किया है। 2007 में वर्जीनिया टेक शूटिंग से लेकर 2010 में हैती भूकंप के दौरान शैक्षिक संस्थानों का विनाश और 2005 में तूफ़ान कैटरीना द्वारा उत्पन्न व्यापक तबाही तक, उच्च शिक्षा क्षेत्र को लगातार सुरक्षा और निरंतरता बनाए रखने में चुनौतियों का सामना करना

पड़ा है (अल्टियस, 2017, पोमेरे एट अल., न.क.; व्यूएग एट अल., 2008)। हैती भूकंप और 2005 में तूफ़ान कैटरीना द्वारा उत्पन्न व्यापक तबाही के मामले में, उच्च शिक्षा क्षेत्र को सुरक्षा और निरंतरता बनाए रखने में लगातार चुनौतियों का सामना करना पड़ा है (अल्टियस, 2017, पोमेरे एट अल., न.क.; व्यूएग एट अल., 2008)। COVID-19 के मामले में, महामारी ने न केवल शैक्षिक जीवन में व्यवधान डाला, बल्कि लंबे समय तक वित्तीय और परिचालनात्मक प्रभाव भी उत्पन्न किए, जिसमें वैश्विक शिक्षा नुक़सान का अनुमान ट्रिलियनों डॉलर में किया गया (प्साचरोपोलस एट अल., 2020)।

सऊदी अरब के संदर्भ में, उच्च शिक्षा में आपदा तैयारी राष्ट्रीय रणनीतिक उद्देश्यों के अनुरूप है, विशेष रूप से विजन 2030 के ढाँचे के भीतर। इस विजन में सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों और संकट प्रबंधन को सुदृढ़ करने के महत्त्व पर ज़ोर दिया गया है, जैसे कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य आपदा प्रबंधन केंद्र की स्थापना (सऊदी विजन 2030, न.क.)। विश्वविद्यालयों में आपदा प्रबंधन को सुदृढ़ करना विजन 2030 के लक्ष्यों में सीधे योगदान करता है, जीवन की गुणवत्ता को सुधारता है और महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढाँचे की सुरक्षा और लचीलापन सुनिश्चित करता है।

इन बढ़ते जोख़िमों और स्पष्ट रूप से तैयारियों की आवश्यकता के बावजूद, शोध से पता चलता है कि कई विश्वविद्यालयों के पास व्यापक आपदा प्रबंधन रणनीतियाँ और अपनी समुदायों की उचित सुरक्षा के लिए पर्याप्त संचार प्रणालियाँ नहीं हैं (मर्फी एट अल., 2019; ऑलेटा, 2012)। इन अंतरालों को संबोधित करने के लिए, विश्वविद्यालयों को केवल गुणवत्ता शिक्षा और अनुसंधान प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए, बल्कि आपदा जोख़िम कमी में सक्रिय भागीदार बनना चाहिए। इसमें परिसर-व्यापी तैयारी योजनाओं का विकास, जोख़िम जागरूकता कार्यक्रमों का संचालन, और छात्रों और कर्मचारियों के बीच लचीलापन की संस्कृति को बढ़ावा देना शामिल है (बॉयल्स, 2012)। शैक्षिक पहलों, जैसे कि पाठ्यक्रम में आपदा तैयारी को एकीकृत करना, यह दिखाया गया है कि इससे छात्रों के आत्मविश्वास और आपातकालीन स्थितियों में प्रतिक्रिया करने की क्षमता में वृद्धि होती है, इस प्रकार विश्वविद्यालय समुदाय की समग्र लचीलापन को सुदृढ़ किया जाता है (कपुप्रन -- खोसा, 2013)।

इसलिए, यह अध्ययन विश्वविद्यालयों की भूमिका का अन्वेषण और वृद्धि करने का उद्देश्य रखता है, विशेष रूप से सऊदी अरब में उच्च शिक्षा संस्थानों में लचीलापन को सुधारने पर ध्यान केंद्रित करते हुए। प्रभावी रणनीतियों और ढाँचों की पहचान करके, यह शोध भविष्य की आपदाओं के सामने जीवन सुरक्षा, शैक्षिक निरंतरता, और संस्थागत स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षित और तैयार विश्वविद्यालय वातावरण के विकास का समर्थन करेगा।

आपदा अनुसंधान में विश्वविद्यालयों की भूमिका

अनुसंधान अक्सर आपदा प्रबंधन के सबसे गलत समझे गए तत्वों में से एक होता है। आपदा चिकित्सा के क्षेत्र में, इसे कभी-कभी परिचालन प्रतिक्रियादाताओं द्वारा एक पूरी तरह से

सैद्धांतिक अभ्यास के रूप में देखा जाता है, जो उन व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जिनके पास वास्तविक दुनिया की आपदाओं या चिकित्सा आपदा चुनौतियों का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। हालाँकि, वास्तविकता में, अनुसंधान आपदा की तैयारी, प्रतिक्रिया और पुनर्प्राप्ति में प्रगति लाने में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। उच्च गुणवत्ता वाला आपदा अनुसंधान सबसे प्रभावी रूप से उन पेशेवरों द्वारा किया जाता है जिनके पास आपदा प्रतिक्रिया और योजना में व्यावहारिक अनुभव होता है, क्योंकि वे सबसे दबावपूर्ण और प्रासंगिक अनुसंधान प्रश्नों की पहचान करने में सक्षम होते हैं। व्यवस्थित अनुसंधान के माध्यम से, विश्वविद्यालय आपदा घटनाओं के अंतर्निहित तथ्यों को उजागर करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसी कठोर जाँच और उसके बाद के निष्कर्षों को आपदा प्रबंधन प्रथाओं में शामिल किए बिना, भविष्य की घटनाओं में समान गलतियाँ दोहराए जाने का उच्च जोख़िम होता है। ऐतिहासिक रूप से, विशेष रूप से आपदा चिकित्सा के क्षेत्र में आपदा अनुसंधान का दायरा सीमित रहा है। इसके अधिकांश विकास के लिए, अध्ययन मुख्य रूप से विशिष्ट घटनाओं के वर्णनात्मक खाता पर केंद्रित थे, जिसमें हताहतों की संख्या, चोटें, विस्थापन, और चिकित्सा प्रबंधन की सामान्य समालोचनाएँ दर्ज की जाती थीं। इन हस्तक्षेपों को लागू किया गया। इन हस्तक्षेपों का मूल्यांकन अक्सर प्रतिक्रिया देने वाली एजेंसियों के दृष्टिकोण से किया गया, न कि प्रभावित जनसंख्या की वास्तविक आवश्यकताओं और परिणामों से। इसके परिणामस्वरूप अक्सर पक्षपाती या आत्मसंतुष्ट रिपोर्ट्स तैयार होती थीं, जिनका भविष्य में आपदा कम करने, जोख़िम न्यूनीकरण, लचीलापन निर्माण, या तैयारियों और प्रतिक्रिया रणनीतियों के सुधार के लिए सीमित व्यावहारिक मूल्य होता था। इस संदर्भ में, विश्वविद्यालयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शैक्षिक संस्थान स्वतंत्र, उद्देश्यपूर्ण और विधिवत रूप से सटीक अनुसंधान प्रदान करने के लिए अद्वितीय रूप से स्थित हैं, जो केवल वर्णनात्मक रिपोर्ट्स से आगे बढ़ते हैं। वे आपदा जोख़िम घटाने, तैयारियों की योजना बनाने और प्रतिक्रिया का मूल्यांकन करने के लिए साक्ष्य-आधारित दृष्टिकोणों के विकास में योगदान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, विश्वविद्यालय नवाचार को बढ़ावा देने के लिए उस वर्तमान ज्ञान में खाली जगहों को संबोधित करने वाले परिकल्पनाओं को तैयार करने और परीक्षण करने में मदद कर सकते हैं, इस प्रकार भविष्य की आपदा प्रबंधन रणनीतियों को आकार देने में सहायक हो सकते हैं।

इन अवसरों के बावजूद, आपदा स्थितियों में हस्तक्षेपों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने वाले प्रयोगात्मक और पूर्वानुमानात्मक अध्ययनों के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण अंतर बना हुआ है। अधिकांश आपदा अनुसंधान प्रतिगमनात्मक रहता है, जो एक घटना के तीव्र चरण के बाद किया जाता है, मुख्य रूप से सक्रिय संकटों के दौरान डेटा संग्रहण से संबंधित नैतिक और तार्किक चुनौतियों के कारण। आगे बढ़ते हुए, विश्वविद्यालयों को, सरकारी एजेंसियों, ग़ैर-सरकारी संगठनों और अंतरराष्ट्रीय निकायों के सहयोग से, ऐसे नैतिक रूप से सटीक अनुसंधान विधियों के विकास को प्राथमिकता देनी चाहिए, जिन्हें आपदाओं के दौरान लागू किया जा सके। शैक्षिक संस्थानों और परिचालन एजेंसियों के बीच साझेदारी को सुदृढ़ करना इस क्षेत्र को आगे बढ़ाने और यह

सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक होगा कि अनुसंधान निष्कर्ष आपदा तैयारी, प्रतिक्रिया और पुनर्प्राप्ति में सार्थक सुधार में अनुवादित हो।

आपदा जोख़िम प्रबंधन के माध्यम से आपदा न्यूनीकरण शिक्षा

शैक्षिक संस्थानों में आपदा जोख़िम न्यूनीकरण (DRR) का कार्यान्वयन शिक्षा के कई आयामों से जुड़ा हुआ है, जिसमें पाठ्यक्रम विकास, स्कूल नेतृत्व, प्रबंधन अभ्यास और आसपास के समुदाय के साथ सक्रिय सहयोग शामिल है। शैक्षिक संस्थान सुरक्षा और तैयारी की संस्कृति को बढ़ावा देने में बुनियादी भूमिका निभाते हैं, विशेष रूप से आपदा-प्रवण क्षेत्रों में। उदाहरण के लिए, इंडोनेशिया में लगभग 70 प्रतिशत शैक्षिक संस्थान उन क्षेत्रों में स्थित हैं जो आपदाओं के प्रति संवेदनशील हैं (अमरी, 2017)। इस उच्च स्तर की संवेदनशीलता के बावजूद, 2018 तक इन क्षेत्रों के लगभग 10 प्रतिशत स्कूलों ने अपने कार्यक्रमों में आपदा शिक्षा को एकीकृत किया था (कोस्वारा, 2019)। आपदा शिक्षा को संस्थागत बनाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रयास आपदा सुरक्षित शिक्षा इकाइयों (SPAB) की स्थापना रही है, जिसे पहले आपदा सुरक्षित स्कूल (SMAB) के नाम से जाना जाता था। इन पहलों ने शिक्षा क्षेत्र में आपदा जागरूकता और तैयारी को मज़बूत करने में सकारात्मक योगदान दिया है, जो लगातार और व्यापक अनुप्रयोग के महत्त्व को रेखांकित करता है (कोस्वारा, 2019)। आपदाएँ शिक्षा क्षेत्र पर गहरा प्रभाव डालती हैं, अक्सर छात्रों और कर्मचारियों की जान जाने, सीखने की प्रक्रिया में व्यवधान, सुविधाओं का नष्ट होना, और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ों का नुक़सान होता है (सुजार्था, 2019)। आपदा के दौरान और बाद में शिक्षा की निरंतरता सुनिश्चित करना.शैक्षिक संस्थानों को किसी भी परिस्थिति में संचालन बनाए रखने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल, और बुनियादी ढाँचे से सुसज्जित होना चाहिए। जैसे कि SPAB जैसे कार्यक्रमों का कार्यान्वयन स्कूलों में आपदा लचीलापन की संस्कृति विकसित करने और छात्रों और कर्मचारियों को प्रभावी ढंग से प्रतिक्रिया देने के लिए सशक्त बनाने के लिए आवश्यक है।

साहित्य की समीक्षा

एडौन, बालगाह और मबोहवा (2015) ने बताया कि पिछले दो दशकों में प्राकृतिक आपदाएँ महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ी हैं, जो अफ्रीका जैसे विकासशील क्षेत्रों पर भारी प्रभाव डालती हैं। उन्होंने यह बताया कि अफ्रीका में आपदाओं के गंभीर प्रभावों का मुख्य कारण कमजोर औपचारिक संस्थाएँ हैं, जैसे कि सरकारी और बाजार प्रणालियाँ, जो अक्सर आपदा प्रबंधन में असफल हो जाती हैं। हालाँकि अनौपचारिक, समुदाय-आधारित मुकाबला तंत्र सामान्य हैं, लेकिन इन्हें आधिकारिक रणनीतियों में अक्सर नज़रअंदाज किया जाता है। लेखक एक बहु-क्षेत्रीय ढाँचे का प्रस्ताव करते हैं जो आपदा तैयारी और प्रतिक्रिया को मज़बूत करने के लिए औपचारिक और अनौपचारिक संस्थाओं को जोड़ता है। यह दृष्टिकोण समुदाय-आधारित आपदा जोख़िम न्यूनीकरण (CBDRR) पर बढ़ती हुई ज़ोर को समर्थन देता है, जो लचीलापन निर्माण और आपदाओं के विकास पर

दीर्घकालिक प्रभावों को कम करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है।

सीफी एट अल., 2020 उच्च शिक्षा समुदाय की सामाजिक संरचना का एक महत्त्वपूर्ण घटक है और समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उच्च शिक्षा संस्थानों की ज़िम्मेदारी है कि वे व्यक्तियों को सामाजिक विकास और समस्याओं को हल करने के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करें, ताकि वे समाजी चुनौती का समाधान कर सकें। विश्वविद्यालय-नेतृत्व वाली पहलों के साथ समुदाय प्रशिक्षण और शिक्षा को एकीकृत करना प्रभावी आपदा जोख़िम प्रबंधन प्रथाओं को समझने और लागू करने में मदद कर सकता है। COVID-19 महामारी के हालिया अनुभवों ने उच्च शिक्षा संस्थानों में आपदाओं से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए पर्याप्त बुनियादी ढाँचे और व्यापक रणनीतियों की कमी को और अधिक उजागर किया है।

इजुमी एट अल., 2021 विश्वविद्यालयों को आपदा प्रबंधन से संबंधित अनुसंधान और नवाचार के लिए पर्याप्त बजटीय संसाधन आवंटित करना चाहिए। अनुसंधान करना और उसे लागू करना, विशेष रूप से विकासशील देशों में, समुदायों की सुरक्षा के लिए प्रभावी योजनाओं को विकसित करने और जोख़िमों की पहचान करने के लिए आवश्यक है, और अंततः आपदा-लचीला समाजों के निर्माण में योगदान करता है। इसके बावजूद, कई विकासशील देशों को आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास के लिए सीमित वित्तीय और मानव संसाधनों के कारण महत्त्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

वैश्विक आपदाओं की बढ़ती आवृत्ति और गंभीरता इस बात की तत्काल आवश्यकता को उजागर करती है कि आपदा शिक्षा (DE) और पेशेवर प्रशिक्षण में सुधार किया जाए। पोस्ट सेकंडरी शिक्षा संस्थान (PSEIs) इस प्रयास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, हालाँकि इन संस्थानों में DE के विकास की स्पष्ट समझ सीमित रहती है (चौधुरी और वू, 2023)। 2011 से 2022 तक 76 अध्ययनों की प्रणालीबद्ध समीक्षा के माध्यम से, चौधुरी और वू (2023) ने PSEIs में DE की चार मुख्य विशेषताएँ पहचानी : नवाचारी शिक्षण विधियों की आवश्यकता, अंतर्विभागीय दृष्टिकोणों का एकीकरण, सक्रिय...समुदाय साझेदारियाँ, और DE और जलवायु परिवर्तन शिक्षा के बीच कनेक्शन। वे भविष्य के शोध पर नए शिक्षण रणनीतियों, पार-संवर्गीय सहयोग, और ग़ैर-शैक्षिक संगठनों के साथ मज़बूत साझेदारी पर ध्यान केंद्रित करने की सिफारिश करते हैं ताकि समुदाय की जागरूकता बढ़ाई जा सके और आपदा-लचीला समाजों का निर्माण किया जा सके।

निष्कर्ष

शैक्षिक संस्थान अंतरराष्ट्रीय आपदा प्रबंधन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, आपदा तैयारी को बढ़ावा देते हुए, प्रभावशाली शोध करते हुए, और संकटों के दौरान शिक्षा की निरंतरता सुनिश्चित करते हैं। वैश्विक सहयोग, पाठ्यक्रमों में DRR का समावेश और सक्रिय नीति सहभागिता के माध्यम से, स्कूल और विश्वविद्यालय आपदा जोख़िमों को महत्त्वपूर्ण रूप से कम कर सकते हैं, जबकि लचीले समुदायों का निर्माण भी कर सकते हैं। यह अध्ययन इस आवश्यकता को उजागर

करता है कि अकादमिक संस्थान केवल शिक्षा प्रदान नहीं करें, बल्कि वैश्विक आपदा प्रबंधन रणनीतियों को आकार देने में सक्रिय रूप से नेतृत्व और भागीदारी भी करें। इन भूमिकाओं को सशक्त बनाना यह सुनिश्चित करेगा कि शैक्षिक संस्थान एक सुरक्षित और अधिक आपदा-लचीला विश्व बनाने में महत्त्वपूर्ण चालक बन जाएँ।

❑

संदर्भ

1. पब्लिशिंग इंडिया। (कोई तिथि नहीं)। ब्रॉशर प्राप्त करें। प्राप्त किया गया http://www.publishingindia.com/GetBrochure.aspx?query=UERGQnJvY2h1cmVzfC85NDYucGRmfC85NDYucGRm
2. कुमार, आर., और साहू, आर. (2019)। छात्रों के सीखने का मूल्यांकन करने के लिए सेल्फ-रिफ्लेक्शन और इंसाइट स्केल का मान्यता देना। जर्नल ऑफ एजुकेशन फॉर हेल्थ प्रोमोशन, 8(8)। प्राप्त किया गया http://www.publishingindia.com/GetBrochure.aspx?zquery=UERGQnJvY2h1cmVzfC85NDYucGRmfC85NDYucGRmhttps://journals.lww.com/jehp/Fulltext/2019/08000/Validating_Self_Reflection_and_Insight_Scale_to.85.aspx
3. यूनेस्को। (कोई तिथि नहीं)। आपदा जोख़िम न्यूनीकरण शिक्षा। प्राप्त किया गया https://www.unesco.org/en/disaster-risk-reduction/education
4. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP)। (कोई तिथि नहीं)। आपदा जोख़िम प्रबंधन में विश्वविद्यालयों और अकादमिक संस्थाओं की भूमिका। प्राप्त किया गया www.undp.org/bosnia-herzegovina/stories/role-universities-and-academia-disaster-risk-management
5. यूनियन ऑफ कंसर्नड साइंटिस्ट्स। (कोई तिथि नहीं)। आपदा प्रतिक्रिया में अकादमिक संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका। प्राप्त किया गया https://blog.ucsusa.org/science-blogger/academic-institutions-have-a-strong-role-to-play-in-disaster-response/
6. नेशनल इंस्टीट्यूट्स ऑफ हेल्थ (NIH)। (2022)। आपदा प्रतिक्रिया में अकादमिक संस्थाओं की भूमिका। पबमेड सेंट्रल। प्राप्त किया गया https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC10770163/

सौम्या पांडेय

भारत की वर्तमान स्थिति में नागरिकों के कर्त्तव्य

'ऑपरेशन सिंदूर' भारत की गौरव गाथा बन चुका है। भारतीय बहनों के सिंदूर उजाड़ने वाले दरिंदों से हिंदुस्तानी सेना ने बदला ले लिया था। 7 मई को अचानक हुए इस हमले से पाकिस्तान बौखला गया। पाकिस्तान ने अपने आतंकियों का दाह संस्कार सैन्य विधि द्वारा उनके शवों को वहाँ के झंडे में लपेट कर किया। यह उस मुल्क़ का असली चेहरा दिखाने के लिए पर्याप्त है जो आतंकियों को पनाह देता है और उन्हें अपनी सेना मानता है। भारत के इस क़दम पर प्रतिक्रिया तो अवश्यम्भावी थी सो उस कायर मुल्क़ ने भारत के पुंछ में आम जनता पर वहाँ के स्कूलों, घरों पर हमला किया जिसमें हमारे कई निर्दोष लोग व मासूम बच्चे भी मारे गए और हताहत हुए। इस निकृष्ट हरकत के द्वारा उसने स्वयं के लिए युद्ध आमंत्रित कर लिया और भारत को भी युद्ध के लिए बाध्य कर दिया।

अच्छी बात यह है कि पहलगाम की घटना के बाद भारतीय सेना ने पाकिस्तान पर कार्यवाही करने से पहले अपने देश की सुरक्षा की भरपूर तैयारी कर रखी थी। एक ओर जहाँ पाकिस्तान हमेशा की तरह कायराना हरकत करते हुए भारत के रिहायशी इलाक़ों को निशाना बना रहा था साथ ही हमारे धार्मिक स्थलों पर हमला कर रहा था वहीं भारत उसके हर हमले को नाकाम करते हुए भी वहाँ के नागरिकों पर निशाना नहीं साध रहा था। ये मानवता भारत की पहचान है।

अब बात भारत की जनता की, जिन्हें यह समझना होगा कि भारत की वर्तमान स्थिति में उसके क्या कर्त्तव्य हैं। 'ऑपरेशन सिंदूर' स्थगित हुआ है अभी समाप्त नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में देश की रक्षा के लिए जनता के कंधों पर भी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। जब भी देश युद्ध की स्थिति में हो उससे ज्यादा जनता की भी सेना के प्रति जिम्मेदारी होती है। आज के समय में युद्ध केवल सीमाओं पर ही नहीं लड़ा जाता बल्कि मीडिया हाउस, सोशल मीडिया द्वारा भी लगातार युद्ध चलता रहता है जिसे देश की जनता लड़ रही होती है। मीडिया हाउस का यह दायित्व है कि वे युद्ध की लाइव ख़बरें न दिखाए, सरकार की सभी तैयारियों का प्रचार न करें। अफवाहें न फैलाएँ, झूठी व चटकारेदार ख़बर न परोसें बल्कि गंभीरता का परिचय देते हुए युद्ध से संबंधित उन्हीं दस्तावेज़ों को प्रस्तुत करें जिसे भारत सरकार आधिकारिक रूप से मान्यता प्रदान कर रही हो, क्योंकि इन ख़बरों का सीधा प्रभाव दुश्मन पर पड़ता है।

अब इन परिस्थितियों में जनता का दायित्व है कि सरकार व सेना पर भरोसा बनाए रखते

हुए संयम से काम लें। युद्ध कोई सेलिब्रेशन या उत्सव नहीं है, जिसमें हम अति उत्साही या उन्मादी होकर भाग लें, बल्कि युद्ध सहयोग माँगता है, जहाँ हमारी सेना बलिदान के लिए दुश्मनों की मिसाइलों, बमों, गोलियों से जूझ रही हो वहाँ उनकी जीवन रक्षा की प्रार्थना होनी चाहिए। हमारी सेना विश्व की सर्वश्रेष्ठ सेना है, हमारे हौसले से भरपूर, जाँबाज सिपाही दुश्मनों के दाँत खट्टे करने में सक्षम हैं और उन्होंने उनके दाँत खट्टे कर भी दिए हैं, किंतु जब युद्ध होता है तो शहादत भी होती है, जान माल का नुक़सान भी होता है, ऐसे समय में हमें सेना के साथ क़दम-से-क़दम मिलाकर खड़े होना होगा। उनके किसी भी कार्य को सरकार के किसी भी निर्णय को पॉइंट आउट करने का यह समय नहीं होता, आपस में लड़ने व विपक्षी पार्टियों की तरह सरकार या सेना पर आरोप लगाने का यह समय नहीं होता बल्कि यह समय एक जिम्मेदार नागरिक की भूमिका निभाने का है, सरकार के द्वारा जारी की गई गाइडलाइंस को मानने का है।

जनता को कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना है जिससे देश या सेना के लिए मुसीबत हो जाए। किसी भी पार्टी, व्यक्ति को इस समय सरकार के विरुद्ध कुछ भी कहने से पूर्व यह सोचना होगा कि वे दुश्मन देश को मौका दे रहे हैं भारत के विरुद्ध बोलने का और इस समय इस प्रकार का कार्य देशद्रोह की श्रेणी में आएगा। भारत की जनता को इस समय सभी विवादों, असहमतियों को किनारे रखकर, जाति, धर्म, पंथ से ऊपर उठकर केवल भारतीय बनकर रहना होगा तभी हमारी सेना निश्चिंत होकर युद्ध कर पाती है।

आंतरिक विरोध सेना व सरकार को कमजोर करने व दुश्मनों को बढ़ावा देने का कार्य करते हैं, हमें देश का साथ देना है, एकजुट रहना है, साथ ही सेना की गाइडलाइंस को पूरी तरह से मानना है। ऑपरेशन सिंदूर के दौरान देखा गया कि ब्लैक आउट की मॉक ड्रिल के दौरान बहुत से घरों में अँधेरा नहीं किया गया। सुरक्षा नियमों का पालन नहीं किया गया, यातायात यथावत चलता रहा, लोगों ने इस महत्त्वपूर्ण सुरक्षा प्रयोग का नियमतः पालन नहीं किया जबकि यह उन्हीं की सुरक्षा के लिए है। जिस समय बॉर्डर से सटे सभी प्रदेशों में हाई एलर्ट था, वहाँ ड्रोन से लगातार अटैक हो रहे थे, ऐसे में यदि दुश्मनों को थोड़ी-सी भी जानकारी मिल जाती कि कहाँ रिहायश है तो वह हमला करने से चूकता नहीं, ब्लैक आउट इसीलिए किया जाता है कि अँधेरे में दुश्मन को पता न चले कि कहाँ लोग रहते हैं और कहाँ खाली ज़मीन या पहाड़ हैं, जिससे बम गिराने से पहले उसे कन्फ्यूज किया जाए और बस्तियों को उजड़ने से बचा लिया जाए। यह प्रयोग सन् 1971 के युद्ध के समय भी किया गया था।

इसके साथ ही सेना से संबंधित कोई भी जानकारी जो आपको मिल रही हो, आपके आसपास घटित हो रही हो, उसे क़तई सोशल मीडिया पर लिखित में अथवा तस्वीरों के माध्यम से प्रसारित न करें। अतः सभी नागरिकों से यह अपील है कि सजग रहें, सतर्क रहें व ऐसी कोई भी जानकारी जो हमारे सैनिकों, सेना की मूवमेंट अथवा युद्धक विमानों की गतिशीलता से संबंधित हो उसे साझा न करें।

हाल ही में भारत में पाकिस्तान के कई घुसपैठियों व जासूसों को भी पकड़ा गया है, ऐसे

स्लीपर सेल हमारे व आपके बीच भी हो सकते हैं। अतः किसी भी देश विरोधी गतिविधि की सूचना तुरंत ही सरकार को देनी होगी। नीचे दी गई ईमेल आईडी द्वारा भारत सरकार को संदिग्ध की जानकारी प्रदान करें, Info.nia@gov.in

भारत के नागरिकों के कर्त्तव्यों अथवा दायित्वों के बारे में भारत के संविधान में स्पष्ट प्रावधान कर दिया गया है। यद्यपि इन कर्त्तव्यों को भारत के संविधान में 1972 में जोड़ा गया था किंतु इस बात से इनका महत्त्व कम नहीं हो जाता। भारत के संविधान में मूल अधिकार तो आरंभ में जोड़े गए थे। मूल अधिकार और कर्त्तव्य एक-दूसरे के अनुपूरक हैं। नागरिकों को मूल अधिकार तभी सुनिश्चित किए जा सकते हैं जब वह अपने कर्त्तव्यों का अनुपालन करें। अस्तु, संविधान में सम्मिलित मूल कर्त्तव्यों को भारत के संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद 51-क में देखा जा सकता है। भारत के संविधान में मूल कर्त्तव्य ग्यारह हैं और सभी महत्त्वपूर्ण हैं किंतु युद्ध अथवा राष्ट्रीय संकट के दौरान जिन कर्त्तव्यों का अनुपालन करना महत्त्वपूर्ण है। वह हैं, नागरिक संविधान और देश के प्रति अपनी निष्ठा रखें और देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखें और उनकी रक्षा करें। इसके साथ ही आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें। देश की संपदा और संसाधनों की भी रक्षा करें और हिंसा न करें। इसके अलावा, वह संयम, अनुशासन और अन्य मानवीय मूल्यों का अनुसरण करें।

इन सबके अतिरिक्त, नागरिकों को युद्ध की स्थिति में निम्नलिखित नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए --

1. सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों का गंभीरता से पालन करना चाहिए।
2. सरकार का साथ देना चाहिए।
3. किसी भी सूचना को भ्रम की तरह न फैलाएँ, जिससे नागरिकों में असंतोष हो।
4. आसपास के वातावरण से जागरूक होकर सतर्कता, सजगता व सावधानी बरतनी चाहिए।
5. राष्ट्र के प्रति निष्ठावान रहना चाहिए।
6. किसी भी संदिग्ध गतिविधि की जानकारी पुलिस को देना चाहिए।
7. राशन इत्यादि आवश्यक वस्तुओं का अपव्यय नहीं करना चाहिए।
8. देश विरोधी वक्तव्य नहीं देना चाहिए, क्योंकि दुश्मन देश इसका लाभ उठा लेते हैं।
9. आपदा की स्थिति में स्वयं को सेवा के लिए समर्पित करना चाहिए।
10. सैन्य भर्ती की आवश्यकता पड़ने पर उसमें बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेना चाहिए।
11. स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ प्रदान करने की चेष्टा करनी चाहिए।
12. देश की सरकार पर विश्वास रखना चाहिए इससे सरकार का मनोबल बढ़ता है।

हम सभी देशवासियों के लिए राष्ट्र प्रथम है। अतः देश का सहयोग करें, संयमित रहें, एकजुट रहें, सुरक्षित रहें। हमारी, हमारे देश की विजय निश्चित है।

जय हिंद, जय हिंद की सेना!

सादर धन्यवाद

❑

Pran Nath Kumar

WAR OF WORDS
Parliament vs Supreme Court

There is an ongoing war of words between the Supreme Court and Parliament — the law-making body. The conflict is more apparent now, especially in matters connected with the governance of states, where the opposition party is in power, such as Kerala, Tamil Nadu, Bengal, and Himachal Pradesh. Why is this happening? This rift became a buzz after the judgment passed by a bench comprising Justice J.B. Pardiwala and Justice R.M. Mahadevan of the Supreme Court on 8 April, 2025. The Court was hearing a petition filed by the Tamil Nadu Government against the State Governor for an inordinate delay in clearing 10 bills passed by the Tamil Nadu State Assembly.

The Court set aside the reservation of the 10 bills for Presidential consideration in the second round, holding it illegal and erroneous in law. It ordered the Governor and the President of India to observe a time limit for either giving consent or withholding it within a fixed number of days.

The State Government argued that no one should obstruct the passage of bills passed by the Assembly or create unnecessary hurdles in the path of progress and in the implementation of social welfare schemes. The Government requested the Hon'ble Supreme Court to direct the Governor to clear the bills that were left in limbo. It alleged that the Governor's actions were aligned with the wishes of the BJP, the ruling party at the Centre. The Government labeled it as an act of political vendetta, lacking any bona fide or justified reason.

The Chairman of the Rajya Sabha, Shri Jagdeep Dhankhar, criticized the Supreme Court's role, calling it a "Super Parliament" and likened the judgment to a "nuclear missile."

Considering the opinions in the national press or otherwise, just three days after, the Supreme Court in hearing another petition filed by an NGO — seeking the transfer of the Supreme Court's powers under Article 142 to High Courts — a bench of Justice A.S. Oka and Justice Ujjal Bhuyan remarked: How can the Court allow such a petition? How can such a prayer be granted? It requires a constitutional amendment. The prayer is misconceived. The Supreme Court's power cannot simply be transferred to High Courts.

This judgment does not nullify the earlier verdict but serves as a cooling effect on critics of Justice Pardiwala's judgment. Now, it is for the Government, the President, and the Governor to consider how to address or review the earlier

ruling — either through a review petition, an ordinance, or even the extreme step of impeachment for overreach or abuse of power.

The matter is highly complex. Let us wait and see in the coming days whether the bills, already published as laws in the Tamil Nadu Gazette, can be reversed. What political unrest will this generate within Tamil Nadu and the Central Government? This appears to be the first instance in history where a constitutional court has held the Governor and the President accountable.

The Central Government is challenging what it perceives as the Supreme Court acting as a superpower, which puts the judiciary on the back foot. In another case, it was revealed that an order reserved by the Jharkhand High Court three years ago had not yet been issued. This shocked the Supreme Court judges. The Court is imposing deadlines for everyone — even for the President, who otherwise enjoys immunity. Meanwhile, lakhs of cases are pending, including trials, charge sheet filings, and release of prisoners who have completed their sentences but cannot afford bail bonds.

This petition was especially shocking to Justice Surya Kant, who, as the head of the SC Legal Services Committee, recently took the initiative to provide legal aid to prisoners whose cases are delayed. The current state of the judiciary resembles a teacher who preaches abstinence from sweets, yet he and his entire family indulge in them.

Centre vs Supreme Court

The aforementioned judgments are turning points in the ongoing conflict between the Supreme Court and Parliament. This controversy has flared up like wildfire. The BJP, which governs at the Centre, is upset with the Supreme Court on multiple counts. Several judgments have not aligned with BJP's policies. Some bills passed by Parliament and approved by the President remain ineffective due to judicial stays or ongoing hearings. The Central Government feels that the judiciary is inconsistent in handling similar cases. Some rulings seem to favor senior advocates, the wealthy, or politically connected individuals.

The Government is also critical of the Collegium system, which allegedly appoints relatives of former judges, often ignoring merit. As a result, some judgments are immature or contradictory. In several cases, individuals previously convicted of serious crimes by trial and High Courts have now been acquitted, indirectly implying earlier judges were not competent.

In a recent example, a Delhi High Court judge from whose residence crores of rupees were recovered after a fire incident was not dealt with strictly. He should have faced consequences similar to other corruption or money-laundering convicts. This lenient treatment has damaged public trust in the judiciary and its policies.

The BJP and many civil society figures have criticized the Supreme Court for rewarding wrongdoers instead of punishing them as per the law. They also accuse the Court of favoring certain communities over others. Parliamentarians object to making the President accountable for actions under Article 142, claiming this undermines the separation of powers.

A Nation at Crossroads

India is the world's largest democracy. We have the right to free expression — and many exercise it without considering the consequences of their bitter words. Social activists will write countless books to support their chosen sides. Will justice ever trickle down like gentle rain from the skies? Perhaps never.

In this tug-of-war, both sides have forgotten the values of life. If they continue clashing, the global community will lose faith in India's democracy and its values. This war of words will only end when both sides drop their egos and extend a hand of peace. Both must recognize their equal power and roles as pillars of democracy. It's time to shift toward peace and unity, as taught by Lord Buddha. If India's democracy collapses and gives way to autocracy or military rule, only one side will remain — and the nation will face sleepless nights and stagnant economic growth.

In this intense climate, the people of India will condemn the MPs who brought us to this brink. Citizens will see them as self-serving and indifferent to the "aam janta" — the common people. Public contempt will be the inevitable response.

Lessons for the Judiciary

The recent rulings holding Governors and the President accountable for delays also offer lessons to the judiciary on handling sensitive legal matters in the future. Judges must interpret the law judiciously, transparently, and consistently.

No two judges are the same in knowledge or skill. If the subject matter is the same that has earlier been dealt with by another bench or is politically or religiously sensitive, then the bench should consider it very carefully before passing the order or should take steps for the transfer of the said matter to a larger bench or constitutional bench for hearing. This implies that in cases that require deep legal and social insight, judges must exercise caution and stick to the spirit of the law. Two foundational principles must guide their exercise of powers under Article 142.

One of the Principles is Stare Decisis.

Consistency is the cornerstone of justice. Judicial stability breeds public confidence. Courts must respect precedent to avoid chaos. This was emphasized in *Government of Andhra Pradesh v. A.P. Jaiswal (AIR 2001 SC 499)*.

There's a public perception that the Supreme Court lacks consistency. Some examples include:

- Granting bail to high-profile individuals in midnight hearings.
- Constituting special benches to overturn undecided or inconvenient rulings.
- Hearing urgent petitions allowing political figures to board flights.
- Disproportionate attention to cases involving certain communities.

- Uneven handling of long-term convicts and pending cases.
- Offering bond assistance to some while ignoring the plight of others.

This perceived inconsistency and partiality have created mistrust among the people.

The Implication of Judgment Under Article 142

Enforcement of Decrees and Orders of the Supreme Court

1. 'The Supreme Court, in the exercise of its jurisdiction, may pass such decree or make such order as is necessary for doing complete justice in any cause or matter pending before it. Any decree so passed or order so made shall be enforceable throughout the territory of India in such manner as may be prescribed on that behalf by or under any law made by the Parliament, or as the President may, by order, prescribe.
2. Subject to the provisions of any law made on this behalf by Parliament, the Supreme Court has every power to — enforce that law.'

Elasticity

While considering the nature and ambit of Article 142, the Supreme Court in *Delhi Development Authority v. Skipper Construction (P) Ltd.* observed that it is advisable to leave this power undefined and uncatalogued, so that it remains elastic enough to be molded to suit the given situation. (*AIR 1996 SC 2005*)

Supremacy of Parliament

When conflict arises, justice often sides with the one who bears responsibility for others' welfare — like a husband in a household providing food, security, and shelter. If he fulfills these moral duties, he is seen as just. A win for the wife in this analogy might be one of ego rather than societal cooperation. Co-existence is essential — just like in a democracy.

This metaphor illustrates Parliament's supremacy. It can amend the Constitution and provide relief — even to the Supreme Court — for the greater good. Parliament is the custodian of the Constitution and is responsible for governance, law, and public welfare.

Conclusion

While providing justice, the Supreme Court should rely on its inherent constitutional powers as a guardian — not just Article 142. In the current matter, directing the President like a subordinate, undermines Parliament's authority. Such actions reflect judicial overreach and must be checked. In a democracy, the judiciary must maintain its dignity without diminishing the powers of Parliament. Both must work in tandem, not in competition. Only then true justice and progress can prevail.

❑

Shreshth Veer Singh Chauhan

The Effectiveness of the UNO in Enforcing International Law : Successes and Failures

In the international sphere, United Nations plays an important role in maintaining peace, through treaty implementation, peacekeeping missions, war crime tribunals, and sanctions. The research article focuses on the successes and failures along with the challenges the United Nations faces while working on a global scale. The major success of the UN lies in promoting a democratic form of government and fighting for peace through diplomacy, war tribunals and trials like the Nuremberg trials. While failure of the UN lies in its inability to curb violence in the case of Syria and the present Ukraine-Russia war. The UN has a slow process due to the P5 countries and their veto powers making quick and fast decisions. Addressing the challenges the article also provides recommendations to improve the UN framework so it can curb its limitations and enforce international laws more effectively.

Keywords

• United Nations (UN) • International Law Enforcement • Peacekeeping Missions • Security Council Veto Power • War Crimes Tribunals • Human Rights Violations • Sanctions and Diplomacy • Geopolitical Challenges • International Criminal Court (ICC) and • UN Legal Framework

Introduction

Remnants and the memories of the World War led to a broken world anxious about war and its devastating result. Curbing and protecting the future generation from the scars of war. created in 1945, the UN came into existence in San Francisco to promote peace at the global level and promote international cooperation. The experience of world war I, was very traumatic globally leading to turbulent times in geopolitical history with the fall of great dynasties like Russia, Turkey, Austria-Hungary and Germany. This war was just the beginning or the origin of a bigger war that was about to come World War II. Considered the deadliest war in the history of the world WW II resulted in more than 70 million deaths around the globe (Beevor 15). Germany, Italy and Japan were occupied, economic devastations were on high and there were unprecedented horrendous acts against humanity that not only shamed human dignity but also

showed the worst of humans against humans. To overcome such problems together globally, the United Nations Organisation was created to help get out of global poverty and promote peace and prosperity. Thus, the UN was created on 24, October 1945 ratified by 52 countries It presently consists of 193 members focusing on climate change, poverty, development and humanitarian aid ("About the United Nations").

The primary reason for the creation of the UN was to avoid another war after World War II, similar step was taken after WW I with the formation of the League of Nations which ultimately failed to stop WW II (Mazower 101). However, with the UN was designed and enforced to be much stronger and effective in maintaining global stability, aiming to resolve conflicts among countries with diplomacy while preventing aggression. Considering the atrocities that were committed against humans, United Nations focused on promoting human rights which led to the Universal Declaration of Human Rights in 1948 (Lauren 56). Along with this UN started to establish programmes like the World Health Organisation and UNICEF.

Although, the UN has played an important role in establishing a global legal structure and fostering collaboration, institutional problems and political issues affect the execution of international law. United Nations enforces international law and settles disputes between nations through its different structures like the International Court of Justice (Malone 214). Agencies like the Human Rights Council and International Criminal Court to help find accountability on the powerful countries. United Nations has been successful in imposing international law, particularly in the case of human law with institutions like the Human Rights Council. Over the years, UN has completed many peacekeeping missions and maintained peace in war-like areas, especially Sierra Leone and Liberia (Durch 178). With initiatives like the Paris Agreement, the United Nations has addressed climate change.

Nevertheless, the UN has chink in its Armor, there have been times in history when we have seen limitations of the United Nations, as it lacks the enforcement power to impose sanctions or take any aggressive military action (Weiss 49). The Security Council of the UN has a numerous member but only five countries are permanent members (USA, France, United Kingdom, Russia and China) with exclusive veto rights making international politics more complex as these countries protect themselves and their allies (Luck 60). Also, the horrific events like the Rwandan Genocide of 1997, the Syrian Civil War and the Russia – Ukraine conflict have shown the inability of the UN to take any strong stance against human rights violations and holding the stronger nations accountable despite calling for peace.

The Legal Framework of the UN in Enforcing International Law

The UN charter clears its vision in its preamble to prevent the new generation from the scourge of war and work on common interests like

eradicating of poverty, hunger and global warming (United Nations 3). The UN includes six principal organs The Secretariat, the General Assembly, The Economic and Social Council, the Security Council, and The International Court of Justice (Bailey 27). In 1945, the constitution of the UN was established as the UN Charter, which outlines the principles of peace, sovereignty, security and non-aggressive policies.

The legal standards set by the United Nations, are through agreements and treaties that bind the states with the view to establish international norms for issues like human rights, environmental protection and business (Hurd 131). For example, treaties like Paris Agreement on Climate Change. Conventions on the elimination of all forms of discrimination against women and the rights of the child set standards globally regarding human rights and universal obligations. Member countries can rectify and promote such conventions making them signatories. Further, it is important to note that the general assembly resolution is not legally binding while resolutions by the Security Council are legally enforceable under UN Charter Chapter VII (Bodansky 117).

Nevertheless, it is not smooth sailing when it comes to the application of UN charters and resolutions, the major challenge in enforcing the UN laws is its enforcement mechanism. The UN does not have any law enforcement force to make sure its laws are implemented as they happen in a state. The burden of enforcement is on member states to implement international law. The sovereignty of states supersedes it, it's up to nations to implement the UN laws or not based on their national interest (Shaw 89). International laws are often kept on the back burner due to geopolitical interests. The five most powerful nations of the world i.e., France, China, the United States, the United Kingdom and Russia have veto powers that can block any new resolutions. Along with it, the UN has a weak judicial authority with enforcement depending upon the states despite ICJ and ICC rulings (Simma and Khan 311).

Article 1 of the charter focuses on promoting and maintaining global peace and security. And measures to take to protect the peace suppress any aggression and conform to international law. It also encourages relations between countries by fostering equal rights and working towards universal peace (United Nations 7). It strives to bring the world onto a round table work towards solving international problems and promote human rights. The economic, political, social and human rights issues are solved by countries together. It advises nations to promote fundamental rights with no discrimination against any race, sex, religion or language while maintaining harmony.

Article 2 of the UN Charter prohibits any use of force, only permitting the use of force in case of self-defence or premised by the security council. The article provides principles for the UN and its members to focus on sovereign equality, members fulfilling their duties in good faith, and members striving towards peaceful dispute resolution without affecting peace and justice. Further, the charter also suggests that nations must not threaten or aggressive force on

any territory that affects the integrity of a state. Members are also directed to contribute to UN actions while implementing their measures. The UN keeps itself out from any domestic affairs or politics of any member state. Chapter VI focuses on dispute resolution with the help of arbitration, mediation and ICJ. Chapter VII permits sanctions that can be imposed by the Security Council and even employ military impose, for example, Libya and Iraq. Chapter VIII approves that collaboration can take place between regional organizations; for instance, the European Union, African Union and NATO.

Successes of the UN in Enforcing International Law

The United Nations has been successful in playing important peacekeeping missions or resolutions that have helped neutralize war-torn regions. The UN peacekeeping operations work under the DPO (Department of Peace Operations) to promote ceasefire and protect civilians. In Sierra Leone UNAMSIL UN peacekeeping mission ran from 1999 - 2005 by disarming rebel groups, helping the country conduct free and democratic elections and launching a special court for Sierra Leone, prosecuting war criminals. Another case is where Namibia got its independence from South African rule with UN help by helping them supervise elections and ensuring a safe transfer of power.

United Nations has been successfully imposing sanctions and diplomatic pressure as per Chapter VII of the UN Charter instead of using military action. Mainly such sanctions have been economic sanctions, assets freeze, arms embargoes and travel ban to maintain pressure upon the government. However, its effectiveness has been somewhat questionable as countries often find themselves out with the help of certain loopholes. For instance, in the Iran nuclear deal in 2015, where the UN successfully negotiated between the USA, the UK, France, Russia and China with Iran regarding Iran's nuclear program and ultimately sanctions were lifted and showed the importance of international law. Another example is of Apartheid Sanctions that were placed on South Africa from 1962 to 1994, which pressurized South Africa to end the apartheid if they wanted to get rid of economic sanctions and arms embargoes, this ultimately led to the democratization of South Africa and the release of Nelson Mandela.

When it comes to prosecuting war crimes, the UN has successfully managed to condemn crimes against humanity in the form of genocide. With the help of International Criminal tribunals, the UN has established as hoc tribunals to make sure in the context of specific conflicts war crimes are prosecuted. Furthermore, as a permanent court system, the International Criminal Court was established in 2002 to emphasise individual accountability in case of worst crimes. There have been numerous examples like Nuremberg Trials, in the horrific case of the holocaust where the Nazi leaders were prosecuted for their crimes against humanity and genocide. Another case was Rwanda's leader Jean Kambanda was prosecuted in 1994 for the mass killings

popularly known as the 1994 Rwandan Genocide.

The UN has successfully managed to bring the world onto the same table with the help of treaties like the Montreal Protocol in 1987, which effectively reduced the ozone-depleting substances popularly known as CFCs which got universal ratification by all member states. Another example is the Paris Agreement in 2015, an important agreement focusing on climate change and taking effective action against reducing greenhouse emissions. Throughout the globe, this agreement helped many countries inspiring nations to create their climate change policies and make early investments in renewable energy resources.

Failures of the UN in Enforcing International Law

The road to maintaining world peace has not been smooth rather it has had its ups and significant downs. The main challenge is the Veto powers of the P5 countries that have caused deadlocks. The veto power often used from political viewpoints has prevented the UN from making timely decisions against conflicts (Weiss 127). This leads to delays and prolongment of humanitarian crisis and violation of international laws. Thus, the Veto power empowers the five permanent members to reject peace resolutions. The international politics and economic benefits come into play, which dictates the Security Council and their decisions (Bosco 98).

The Syrian civil war is a prime example of the UN's failure to advocate for peace in the world. Since 2011, there have major human rights violations in Syria and numerous war crimes which Russia and China as vetoed repeatedly to impose sanctions. Till now, millions of people displaced and more than five hundred thousand deaths (Power 146). As the world was recovering from the remanents of Covid 19, Russia-Ukrainian conflict escalated in 2022. As Russia invaded Ukraine, despite the UN condemnation Russia enjoyed the elite permanent member status and vetoed any measure which affected the UN's ability to give any military infiltration and major sanctions (Thakur 83).

United Nations at its core does not have any enforcement power and any compliance depends upon the member States' will to comply. Though the International Court of Justice can pass judgements but cannot force a country to imply them. So, it is clear that ICJ does not have binding enforcement authority despite their verdict being legally binding (Franck 35). The enforcement of the verdict depends upon the security council which works as per national interest and politics among the nations that delays any concrete changes. In the case of Nicaragua vs. the United States, ICJ rulings were ignored by the US as the international court supported the Contra rebels and ruled that the US had violated international law and that they needed to pay reparations. The US ultimately vetoed the resolution and no judgment was enforced (Franck 68).

Though the UN has managed some successful peacekeeping missions there have been numerous times when they have failed to protect peace and it

has led to mass killings, genocides, and stretched conflicts. The reason behind such failures is a lack of military conflicts and insufficient mandates. The peacekeeping mission of the UN has suffered from the lack of resources from insufficient funding (Thakur 98). The Srebrenica massacre of 1995 is a prime example of the UN's failure. During the Bosnian despite UN declaring Srebrenica a safe zone, the UN peacekeepers failed to protect the mass killings of 8000 people.

North America has been a repeated offender, where numerous sanctions against North Korea's nuclear program. Since China and Russia trade with North Korea, they veto against any sanction or any measure. Funded from cybercrime and cryptocurrency, the North Korea nuclear program has been developing.

Challenges and Recommendations

The UN faces challenges from its operational, political and structural limitations that have affected the way international law is implemented globally. Often the state sovereignty, and politics at the security council table have been the main culprits (Gray 78). Thus, reforming the UN is the solution to hold on to the vision of global peace successfully.

Firstly, the UN Security Council's veto power must be reformed, limiting the powers in cases of genocide and mass killings can curb the UN's inaction. It must be the responsibility of the P5 countries to protect. There must be a responsibility to protect to counter their veto rights in case of human rights violations (Stein 302). The Security Council table should invite more permanent members, i.e., countries like India, Japan and Germany should be present so that there is diversity on the table instead of polarization.

The International Criminal Court must expand its powers in terms of enforcement of its judgement by establishing an independent UN enforcement body. By establishing an international police force UN can effectively execute the arrest of war criminals. There shall be rather strict sanctions on nations that would be tough to bypass. The peacekeepers must have a strong mandate to prevent mass atrocities with a better training strategy.

Conclusion

The United Nations has been an important institute of the world playing a crucial role in maintaining peace in the world through its peacekeeping missions, sanctions and treaty implementation. The success of the UN can be seen in its peacekeeping mission in Namibia which also played an important role in implementing the democratic rule. Ending the apartheid in South Africa was particularly a success when the sanctions were implemented. Concerning climate change international treaties like the Paris Agreement and Montreal Protocol have emerged successful in meeting the end goals. Nevertheless, the UN has faced significant challenges as well particularly in the case of Ukraine

and Syria, where the UN proved incapable of taking any concrete actions. The absolute veto power, weak enforcement strategies and not-so-effective peacekeeping mandates have repeatedly affected the UN's capabilities. Thus, adopting and expanding the security council members to other nations can bring more dynamic. The peacekeeping teams need to be reformed and take quick action against mass killings. Despite the challenges UN does play a key role in geopolitics for governance and maintaining peace.

❑

References

1. "About the United Nations." *United Nations*, United Nations, www.un.org/en/about-us.
2. Beevor, Antony. *The Second World War*. Little, Brown and Company, 2012.
3. Bosco, David. *Five to Rule Them All: The UN Security Council and the Making of the Modern World*. Oxford University Press, 2009.
4. Franck, Thomas M. *Fairness in International Law and Institutions*. Oxford University Press, 1995.
5. Gray, Christine D. *International Law and the Use of Force*. Oxford University Press, 2008.
6. Hurd, Ian. *International Organizations: Politics, Law, Practice*. Cambridge University Press, 2020.
7. Power, Samantha. *A Problem from Hell: America and the Age of Genocide*. Basic Books, 2002.
8. Stein, Eric. "The United Nations and the Enforcement of Peace." *Michigan Journal of International Law*, vol. 11, no. 2, 1990, pp. 295-323. University of Michigan Law School, repository.law.umich.edu.
9. Thakur, Ramesh. *The United Nations, Peace and Security: From Collective Security to the Responsibility to Protect*. Cambridge University Press, 2006.
10. Weiss, Thomas G. *What's Wrong with the United Nations and How to Fix It*. Polity, 2016.

Neeraj Mehta and Dr. Rahul Varshney

The Potential Benefits and Drawbacks of Legal Framework Governing Juvenile Justice in India : A Critical Analysis

Abstract

India is home to the largest child population in the world. Children have been declared as the "nation's supremely asset" in the *national policy for children* 1974[1]. Every child has the inalienable human right to life, nutrition, health , education , development , protection and participation. A safe, secure and protective environment is a precondition for ensuring the fulfilment of all other rights of the child. Children are entitled to protection across all geographies. A country is anticipated to promote child- sensitive justice system, enact forward thinking legislation, and establish proactive and responsive measures to ensure a child protection.

The regulatory structure confronting juvenile justice mechanism in India are the legal principles that recognizes children as distinct class requiring protection, rehabilitation, and successful transition back into the society. Though India's system of criminal justice primarily follows the retributive justice paradigm and predominantly emphasizes the punishment of offenders, however, this is not the case for children accused of offences or vulnerable children requiring safeguarding measures, support and protection. The statutory intent embedded in the Act known as the Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 or the Act of 2015, as laid down in its preamble is to provide for the protection, care, development and re-integration of children guided by the principle of the best interest of the child[2] .

However, the challenges persist, especially in dealing with heinous crimes, infrastructure deficiencies, and inconsistent application of restorative justice principles.

This paper explores the potential benefits and drawbacks of India's JJ Act, 2015 supported by case law, statutory analysis, and scholarly literature.

Keywords : Juvenile Justice, Rehabilitation, Heinous Offenses, Restorative Justice, Juvenile Justice Board, India

1. Introduction

Since the beginning of human civilization, crime has remained a perplexing issue. There is hardly any society without facing the issue of crime. Further, crime is a subjective concept and closely related to social policy of a given time. What is crime today may become a permissible conduct tomorrow and vice-versa. Also, what is considered wrongful at one place might not necessarily be regarded as such in another.

The existence of crime within society is challenging due to its harmful effects, yet it can also be beneficial as it prompts people to come together and take a stand against it. Crime disrupts individuals and relationships, creating an obligation to restore justice.

It is all the more important when crime is committed by children. Children involved in criminal activities represent a vulnerable segment of society. Off late, Juveniles are entering the justice system at exceptional rates. Nearly 30,555 juveniles have committed crime in the year 2022 in India[3], calling for a social justice movement. As on date, The JJ Act, of 2015 is the enactment that governs handling of young offenders in India, driven by the principle of the child's best interest. This framework seems to draws inspiration from international conventions like the UNCRC (United Nations Convention on the Rights of the Child), to which India became a signatory in 1992, committing to treat every child with dignity and recognizing their potential for reformation.[4]

While the system has evolved over the decades—from the Apprentices Act, 1850, Children Acts, 1920, Juvenile Justice Act, 1986 to the current 2015 version—its implementation continues to raise concerns about balancing the rehabilitative needs of children with societal demands for justice, especially in heinous crime cases committed by children.

2. Legislative evolution of the juvenile justice laws in India

In India, the legal stance on *juvenile justice* has undergone a considerable shifts in recent times. It began with the Apprentices Act, which came into effect in 1850, marked an early step toward specialized approach to addressing children involved in legal conflicts. It introduced a mechanism requiring the homeless children and those under the age of 15 who had committed petty offences as apprentices, rather than subjecting them to imprisonment. This was succeeded by the enactment of the Reformatory Schools Act, which allowed the children under the age of 15 to be placed in Reformatory Schools instead of prison, provided they were deemed suitable for rehabilitation. The Children Acts of 1920 further advanced this progressive approach by institutionalizing differentiation of juveniles from adult offenders at the adjudication stage, resulting in the creation of separate courts for juveniles, thus laying the groundwork for a more child-centric justice system. Since independence in 1947, Parliament enacted its first legal framework concerning

this matter namely, The Children Act, 1960 which has some differences from its pre-1960 legislation. It was not until 1983 that journalist Ms.Sheela Barse filed a writ Petition before the Hon'ble Supreme Court, seeking the release of 1,400 children who were being held in various jails across India, despite existing prohibition against the detention of juveniles in police stations or prisons. Through an order, the Hon'ble Supreme Court directed the enactment of a consistent legal framework to be followed nationwide[5]. The Hon'ble Supreme Court of India stressed the relevance of the importance of reformation and re-integration over punishment, a child friendly judicial system & separation of juveniles from adult criminals. This ruling became the foundational judgment laying the need that children must be protected from harsh prison environments that could exacerbate criminal tendencies. This judgment influenced the progression of *juvenile justice* jurisprudence.

Pursuant thereto, the Act of Juvenile Justice of 1986 was passed. It substantially followed the framework set by the Children Act, 1960 but substituted the word "child" with "juvenile" influenced by the Beijing Rules. It also established Juvenile Court. In 1992, when India endorsed and formally accepted the United Nations' charter on children's rights, the Juvenile Justice Act (JJ Act), 1986 was revoked and supplanted by the JJ Care & Protection of Children Act, 2000. This new legislation established the JJ Board to handle issues involving juvenile delinquents. The JJB was formed comprising of a Magistrate and Social Workers (2 numbers) representing a pivotal development from legal to social orientation of the judicial body and upon occurrence of difference of opinion, the *Social Workers* shall possess the power to supersede rulings rendered by magistrate. Ongoing monitoring of challenges encountered while executing the Juvenile Justice Act of 2000(JJ Act,2000)prompted major and extensive revisions of the said Act in 2006. Subsequently, in 2011, the Juvenile Justice (care & protection of children) amendment Act, 2011, was introduced to promote practices inclusive and equitable practices for children affected by disabilities such as Tuberculosis, mental disorder etc.

Numerous writs were filed in response to serious violations, child abuse, and the ineffective enforcement of the J.J. Act. These litigations led to various orders from the Hon'ble Supreme Court intended to strengthen the implementation and execution of the Act. However, substantial change remained limited. Significant improvements were needed in the level of care provided in Special and Observational Homes, including the provision of adequate and trained staff, enhancement of infrastructure, specialized care for children with special needs, vocational trainings, and a stronger emphasis on non-institutional care.

All these laws were gradually expanding the scope to protect more children under the Juvenile Justice. However, after the tragic gang rape of young woman, referred to a Nirbhaya by the media, ignited intense debates across the nation. As a result, a new enactment known as the Juvenile Justice (Care & Protection

of children Act), 2015(JJ Act, 2015) came into effect on January 15th, 2016.

3. Potential Benefits of the Juvenile Justice (Care & Protection of Children) Act, 2015

3.1 *Rehabilitative and Reformative Focus*

The core philosophy of *the Act* continues to be rehabilitative rather than retributive. The Act of 2015 has expanded the notion of care & protection by explicitly addressing not only juvenile offenders or children facing legal proceedings but also those in vulnerable circumstances requiring protective services, but also by emphasizing their development and community re-integration, alongside provisions for their care, protection and rehabilitation[6]. The Act emphasis the protection, care development, well being of juveniles facing legal issues in addition to those requiring special assistance and guidance. It provides avenues such as counselling, skill development, education, and community service aimed at reintegration.

3.2 *Needs and rights of the child as the basis of the Juvenile Justice (Care & Protection of Children) Act, 2015*

The Act centre's its provisions and procedures around the principle of serving best interests of a child at every stage. To adopt principles consistent with globally accepted frameworks for child protection such as United Nations' charter on children's rights, the Act, 2015, retained the same age (all children who have not completed the age of 18 years) and definition of 'child' as introduced by JJ Act 2000 and moved towards a consistent terminology away from the earlier dual terminology of 'child' and 'juvenile'. The Act also incorporates principles drawn from internationally accepted norms such as the *"Beijing Rules"* concerning the juvenile justice and handling of the young persons deprived of their liberty[7].

3.3 *Procedural Safeguards and Specialized Forums*

The Act of 2015 mandates the formation of the *Juvenile Justice Board* (JJB), composed of a judicial magistrate and social workers, to adjudicate cases involving juveniles facing allegations of an offence.[8] This ensures child-friendly, non-adversarial proceedings, protecting juveniles from the trauma of traditional criminal trials.

Additionally, the Act calls for the formation of a "*Child Welfare Committee"* or CWC trusted with the responsibility of overseeing all cases involving children needing care & protection.

The Act of 2015, categorizes the violations or unlawful acts by children into three distinct types: petty offence, serious offence and heinous offence. The JJB or Juvenile Justice Board as it is known as retains exclusive authority to handle

all alleged legal breaches by minors *who are under the age of sixteen (16)* years and those *aged 16 to 18 years* in cases of petty and serious offences. However, in instances where a minor in the 16-18 age group is accused of committing a heinous offence-defined as an offence punishable with imprisonment of seven years or more[9], the juvenile justice board is required to conduct a preliminary assessment. Founded on the assessment, the Board must decide whether to retain the matter within the juvenile justice framework or transfer it to Children's Court, which may be either set up under the Child Rights Act, 2005, or a Special Court under POCSO also known as the Protection of Children from Sexual offences Act, 2012, or a Sessions Court. Upon receiving the case, the Children's Court is mandated to undertake its own assessment to determine how the minor to be tried whether as a juvenile or as an adult.

The Act therefore provides procedural safeguards so that, even when tried as adults, juveniles are treated distinctly and with due regard for their potential for reform.

In *Pratap Singh v. State of Jharkhand*,[10], the Apex Court highlighted the importance of ascertaining a juvenile's age and mental maturity is critical before proceeding with adult trial considerations.

Upon receiving the case, the Children's Court does not automatically proceed with an adult trial. Instead, it does:

- Review the preliminary assessment
- Apply its judicial mind
- Decide either to:
    - Try the juvenile as an adult, or
    - Refer the juvenile back for trial as a child[11]

In *Court on its own Motion v. State*, the Delhi High Court emphasized the requirement of a detailed assessment before subjecting a juvenile to an adult trial, keeping in mind the United Nations' charter, which is a widely accepted international child rights framework.[12]

The Act of 2015, explicitly bars the conduct of a joint trial involving a child and an adult under any circumstances. It further provides for the removal of disqualifications resulting from conviction for any offence, applicable to all children whose cases are conclusively decided by the juvenile justice board, including those who are dealt with by Children's Court. However, this relief is not extended to children aged 16 to 18 years who are found guilty of committing heinous offences and are tried as adults. Even upon reaching 21years of age, such individuals may be denied the advantage of disqualification removal, despite a finding by the court that they have reformed and have been released from the lace of safety.

3.4 Prohibition of Harsh Punishments

Where the Children's Court adjudicate to proceed with an adult trial, consistent with international standards, the following must be followed:

- Trial proceeds in accordance with the CrPC, but child-sensitive procedures are mandatory[13].
- The imposition of capital punishment or sentences that excludes the option of release cannot be imposed.[14]
- The child's identity is kept confidential (Section 74 of JJ Act).

The High Court at Allahabad in *Ali Sher v. State of U.P.* emphasized that **protection and reformation** remain paramount even during an adult trial of a juvenile.[15]

The Court also reviews progress at 21 years to evaluate the final outcome.

3.5 Right to Appeal

The Act of 2015, grants the legal right to file a single appeal against any decision made by the JJB also known as Juvenile Justice Board or the Children's Court. The right is available to children aged 16 to 18 accused of committing heinous offences, as well as to any other individual aggrieved by such orders. This marks a substantial move from *the JJ Act of 2000 ,* which did not permit an appeal in such cases.

3.6 Scope for Restorative Justice Principles

Although not explicitly codified, the Act provides the footing for restorative justice through provisions allowing the juvenile to express remorse, participate in community service, participate in group counselling, and compensate victims.[16] Scholars argue that these elements create opportunities for victim-offender mediation, a hallmark of restorative justice models.[17]

4. Drawbacks and Challenges

4.1 Heinous Offenses and Adult Trials

A highly debated aspect of *the Act of 2015* is its provision enabling children who are within the age bracket of 16 and 18 years of age to be prosecuted as an adult in matters concerning heinous offences.[18]

This provision, introduced as a retort to the 2012 Nirbhaya gang rape, has been criticized for diluting the rehabilitative intent of the juvenile legal system by subjecting children to face prosecution under adult criminal justice system or trials.[19] The child offender in that matter was sent to a reformation home, sparking public outrage and leading to this amendment.[20]

Critics argue that such a shift ignores socio-economic factors contributing to juvenile crime and increases the danger of further criminalization.[21]

4.2 Classification of Offences

The categorization of offences (petty, serious and heinous) has led to major challenges in comprehending and enforcing the provisions.[22] By using the

term “includes”, the definitions intend to be indicative rather than limitative of the offences classified under each category.[23] Moreover, it is a well settled doctrine that criminal legislation must be interpreted in a strict and limited manner to avoid broadening the liability attributed to the accused. Accordingly, in interpreting the meaning of petty offence, serious offence and heinous offence, only those offences that align with the qualifying phrases contained within the definition of petty and heinous offences should be considered under those categories. In particular, given that the term ‘maximum’ is used in defining the petty offence, it would be reasonable to treat any offence punishable by up to three years of imprisonment as falling within the petty offence category.

The statutory definition of serious offence encompasses those punishable with imprisonment for a term up-to seven years. Consequently, offences carrying punishment of more than seven years do not fall within this category. At the same time, such offences may also not qualify as ‘heinous offences’ since, under the Act, a heinous offence is one that carries a minimum of seven years or more. This creates a significant gap in classification, which calls for clarification through judicial interpretation. Notably, the centre for child and the law at the NLS university of India has compiled a list of heinous offences, limiting it to those offences that mandate *a minimum imprisonment of seven years term or above*.[24]

Moreover, the offences with a minimum punishment of three years and less than seven years are also to be treated as serious offences, given that their maximum prescribed sentence surpasses three years.

Furthermore, the offences carrying a minimum term of imprisonment ranging from three to less than seven years may also be considered as serious, as the maximum penalty in such instances goes beyond three years.[25]

4.3 Infrastructural Deficiencies

Reports by the apex body for child rights in India, referred to as the *“ National Commission for Protection of Child Rights”* also known as NCPCR, reveal that many observation homes suffer from poor infrastructure, lack of proper sanitation, overcrowding, and inadequate facilities.[26]

In *Sampurna Behura v. Union of India*,[27] the Hon’ble Supreme Court noted severe administrative lapses in juvenile homes and directed states to ensure better monitoring, compliance, and resource allocation.

4.4 Over-Reliance on Institutionalization

While the Act encourages non-institutional care, the ground reality reflects an over-dependence on institutionalization. This tendency often results in long-term confinement, which may adversely affect the child’s psychological development and cause further deviance.[28]

Moreover, limited family and community involvement reduce the chances

of successful reintegration, creating an institutional cycle that is difficult to break.

4.5 Inconsistent Implementation Across States

The functioning of JJBs and the child welfare committees (CWCs) varies significantly across India. According to a 2021 report by the centre for child and the law, [CCL], NLSIU, several states face shortages of trained personnel, leading to delayed hearings and poor rehabilitation outcomes.[29]

This inconsistency undermines the uniform application of juvenile justice and often results in prolonged legal battles that are detrimental to the child's welfare.

4.6 Limited Integration of Restorative Justice

Despite the mention of rehabilitative measures, the current Indian Juvenile Justice system lacks formal restorative justice programs such as Family Group Conferencing or Victim-Offender Mediation—common in countries like New Zealand and Canada.[30]

This absence limits opportunities for healing, restitution, and community engagement in the justice process, perpetuating a largely punitive framework.

5. Conclusion and Recommendations

India's Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 on one hand reflects progressive ideals aimed at reforming and rehabilitating children accused of legal violations and alleged to have committed an offence but on the flip side, it seems a considerable departure from the progressive and future-oriented juvenile justice framework. By providing the use of prisons in certain circumstances, it has taken India back. Further classification of offences into petty offence, serious offence or heinous offence, along with corresponding prison terms, is unprecedented. This development has allowed for the trial of certain children as adults, which contradicts the fundamental goals of the Act. Such a shift in approach has introduced the potential for certain children to be prosecuted as adults, which fundamentally undermines the objectives of the Act of 2015 — particularly its emphasis on rehabilitation, and social reintegration of children[31] — as well as the legal presumption of innocence afforded to all persons below 18 years of age. Therefore, practical challenges and conflicting provisions threaten its foundational objectives.

Key Recommendations :

- **Reassess Heinous Offense Provisions :** Reconsider treating juveniles as adults and explore more nuanced assessment frameworks that consider broader context of a young person's behaviour. While restorative justice models have shown promising

results internationally, including in cases involving grave crimes such as murder, rape by adults, often contributing to a reduction in reoffending rates, India chose to take most regressive steps of introducing retributive approach for young children.[32]

- **Strengthen Infrastructure :** Ensure observation homes are adequately staffed and equipped with trained psychologists, counsellors, and social workers.
- **Formalize Restorative Justice Programs :** Introduce structured restorative justice mechanisms like victim-offender dialogues and community conferencing.
- **Uniform Implementation :** Standardize training and functioning of JJBs and CWCs across states to ensure equitable justice.

A truly rehabilitative juvenile justice system must strike a balance between accountability and compassion, recognizing the unique potential for reform that children inherently possess.

While the Juvenile Justice Act, 2015 provides for trial of juveniles as adults in exceptional heinous cases, the procedural safeguards reflect India's commitment to balancing societal demand for justice with the constitutional and international mandate of juvenile reform and rehabilitation.

❑

References

1. National Policy for Children, 1974
2. The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 Critical Analysis, Ved Kumari, 2017
3. Data-National Crime Record Bureau CII Report
4. United Nations Convention on the Rights of the Child (UNCRC), 1989.
5. Writ Petition (Cri) no. 1451 of 1985; Sheela Barse v. Union of India, (1986) 3 S.C.C 596 (India)
6. Ved Kumari, The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 Critical Analysis 19 (2017)
7. ibid
8. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015, Section 4.
9. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015, Section 2(33)
10. *Pratap Singh v. State of Jharkhand*, (2005) 3 S.C.C 551 (India)
11. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015, Section 19.
12. C*ourt on its Own Motion v. State*, W.P. (CRL) 249/2017, Delhi High Court (India).
13. Juvenile Justice Model Rules, 2016, Rule 13(8)
14. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015, Section 21
15. *Ali Sher v. State of Uttar Pradesh*, 2017 S.C.C OnLine All 2587 (India)
16. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015, Section 18

17. Sharma, P. (2021). *Restorative Justice in India's Juvenile System: Prospects and Challenges,* NLUJ Law Review
18. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015, Section 15
19. Nirbhaya Case (2012), Jugal Kishore v. State of Delhi, (2016) S.C.C OnLine Del 2253 (India)
20. Mukherjee, A, *The Nirbhaya case and its impact on the 2015 JJ Amendment, Juvenile Justice in India: Reform or Retaliation?* ILJ (2019).
21. Ibid.
22. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015, Section 2
23. Ved Kumari, The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 Critical Analysis 37 (2017)
24. This list includes Se 121,195,195A,302, 304B, 311, 326A, 364A, 370(2), 370(3), 3709(4), 370(5), 370(6), 370(7), 376(1), 376(2), 376A, 376D, 392 r/w 397, 396 r/w S397, S393 r/w S398, 395 r/w S398 of the IPC etc
25. For example, Offence under S.354B of the IPC
26. National Commission for Protection of Child Rights (NCPCR), Annual Report 2020
27. *Sampurna Behura v. Union of India*, (2018) 9 S.C.C 506 (India)
28. Centre for Child and the Law (CCL), NLSIU, "Status of Juvenile Justice in India," 2021.
29. Ibid.
30. Zehr, H. (2002). The Little Book of Restorative Justice, Good Books
31. Ved Kumari, The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 Critical Analysis 61 (2017)
32. Ved Kumari, The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 Critical Analysis 103 (2017)

मोबाइल : 09899651272
09899651872

सदस्यता फॉर्म

विधि भारती परिषद्

बीएच-48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

महिला विधि भारती पत्रिका पूर्व में यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल थी।
क्रमांक 156, पत्रिका संख्या 48462

कृपया मुझे विधि भारती परिषद् का सदस्य बनाने की कृपा करें। मेरा चैक/बैंक ड्रॉफ़्ट संलग्न है --

1. वार्षिक सदस्य शुल्क — 800/-- रुपए
2. आजीवन सदस्य शुल्क — 6,000/-- रुपए
3. संस्थागत वार्षिक सदस्य शुल्क — 800/-- रुपए
4. संस्थागत आजीवन सदस्य शुल्क — 20,000/-- रुपए

नाम : ....

शैक्षिक योग्यता : ....

व्यवसाय : ....

कोई प्रकाशित कृतियाँ : ....

स्थाई पता : ....

फोन (कार्यालय) : .... **(घर) :** ....

मोबाइल : .... **ई-मेल :** ....

नोट : विधि भारती परिषद् की सदस्यता के लिए शुल्क परिषद् के बैंक खाते में जमा कराया जा सकता है। कृपया शुल्क के साथ बैंक सेवा चार्ज 100/-- रुपए जमा कराएँ।

Vidhi Bharati Parishad : SBI SB Account No. 10115361055

IFSC Code : SBIN0003702

R.N.I. 61909/95 ISSN : 0976-0024

विधि भारती परिषद् के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1. अनुवाद के नये परिप्रेक्ष्य, लेखक : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 500/- रुपए
2. हिंदी और भारतीय साहित्य में महिला सरोकार, सं. : सन्तोष खन्ना, 2016, मूल्य : 450/- रुपए
3. सामाजिक-विधिक सरोकारों की संस्कृति, लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2012, मूल्य : 77/- रुपए
4. इतिहास बनता समय, लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2012, मूल्य : 300/- रुपए
5. 'क्या पाया?क्या खोया?' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 200/- रुपए
6. रोशनी, (उपन्यास), लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2013, मूल्य : 410/- रुपए
7. 'संग्राम शेष है' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 250/- रुपए
8. 21वीं शती में नारी : क़ानून और सरोकार, मूल्य : 350/- रुपए
9. 'क्या मैं ग़लत थी?' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 200/- रुपए
10. 21वीं शती में मानव अधिकार : दशा और दिशा, मूल्य : 250/- रुपए
11. भारत का संविधान : अनुचिंतन के नये क्षितिज, मूल्य : 250/- रुपए (उपलब्ध नहीं है)
12. भारतीय क़ानूनों का समाजशास्त्र, सन्तोष खन्ना, मूल्य : 500/- रुपए (विधि, न्याय मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत)
13. Dimensions of Environmental Law, Ed. Santosh Khanna, Price : 400/–Rs.
14. Reappraisal of the Constitution, Ed. Santosh Khanna, Price : 350/-Rs.
15. Human Rights Today, Ed. Santosh Khanna, Price : 500/–Rs.
16. The Consumer Protection Law and the Rights of Consumers
    Ed. Santosh Khanna, Price : 400/–Rs.
17. स्मृतियाँ (कहानी-संग्रह) लेखक : अख्तरुल हनीफ, विधि भारती परिषद्, मूल्य : 100/-रुपए
18. उपभोक्ता संरक्षण क़ानून और न्याय, मूल्य : 250/- रुपए
19. 'साक्षी' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 60/- रुपए
20. 'भावी कविता' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 120/- रुपए
21. 'संत जोन', (नाट्यानुवाद), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 245/- रुपए
22. पर्यावरण एवं पर्यावरण संरक्षण क़ानून, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 200/- रुपए
23. 'तुम कहो तो!' (मौलिक नाटक) नाटककार : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 125/- रुपए
24. 'कजरी' (कथा-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 175/- रुपए
25. 'द्रौपदी ज़िंदा है' (कथा-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 150/- रुपए
26. 'खुशी के पल' (कथा-संग्रह) डॉ. सरस्वती बाली, मूल्य : 150/- रुपए (हिंदी अकादमी द्वारा पुरस्कृत)
27. सूचना का अधिकार अधिनियम : कार्यान्वयन और चुनौतियाँ, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
28. 'अब की लड़का नहीं' (कहानी-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 250/- रुपए
29. 'आज का दुर्वासा!' (कहानी-संग्रह), लेखिका : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
30. 'सन्धि-पत्र' (कहानी-संग्रह), लेखिका : डॉ. उषा देव, 2011, मूल्य : 300/- रुपए
31. 'भारत की संसद और सामाजिक सरोकार', सं. सन्तोष खन्ना, 2011, मूल्य : 350/- रुपए
32. 'सब सुंदर है!' (कहानी-संग्रह), लेखिका : डॉ. उषा देव, 2012, मूल्य : 300/- रुपए
33. Birbhadra Karkidholi : The Flight of a Skylark, Ed. Prof. Om Raz, 2017, 300/-
34. 'समय का सच' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
35. भारत में चुनाव, हिंदी की भूमिका और चुनाव सुधार, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
36. सेतु के आर-पार, (नाटक) नाटककार : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 300/- रुपए
37. भारत का संविधान : नए परिप्रेक्ष्य, 2020, मूल्य : 500/- रुपए।
38. भारत का संविधान, संस्कृति और क़ानून, 2021, मूल्य : 100/- रुपए
39. अंतरराष्ट्रीय काव्य-संग्रह 'काव्य सलिला', 2022, मूल्य : 975/- रुपए

पुस्तकें मिलने का पता : विधि भारती परिषद

बी.एच/48 (पूर्वी), शालीमार बाग, दिल्ली-110088

टेलीफोन : 011-45579335, **मोबाइल :** 9899651872, 9899651272

Published & Printed by Santosh Khanna On Behalf of Vidhi Bharati Parishad, BH/48, (Poorvi) Shalimar Bagh, Delhi-88, Mobile : 09899651872, 09899651272 & Printed at Archana Printers, 1/1955, Street No. 22-A, East Ram Nagar, Shahadra, Delhi-32, Mobile : 9811357243